द्वाभा

(लघु-उपन्यास)

प्रभाकर माचवे

साहित्य भवन लिमिटेड
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण : १९५५ ई०

दो रुपया

मुद्रक : रामआसरे कक्कड़
हिन्दी साहित्य प्रेस, इलाहाबाद

: १ :

वैसे आभा ने अपने पूर्व-जीवन के बारे में सोचना छोड़ दिया है। कहते हैं कि जिससे नही निबहना, वह पड़ता है सहना...(दैट ह्विच कैन नौट बी क्यूअर्ड, मस्ट बी एन्डयूअर्ड) यह वृत्ति सुविधाभोगी, दुर्बल-सकल्प व्यक्तियों की होती है। परन्तु आभा का अतीत ऐसा है कि उसके लाख सबल-संकल्प बनने से स्थिति में कोई सुधार न होता। वह ऐसा जख्म उसके जीवन मे है जो निरंतर रिसता रहता है।

कभी-कभी हम किसी नये शहर में जाकर रास्ता भूल जाते हैं। और किसी गली से हमे लगता है कि अब बस पहचानी राह हमने पा ली कि वह गली एकदम जाकर एक दीवाल के सामने रुक जाती है। आभा सोचती है कि नारी का जीवन क्या ऐसी ही कोई अंधी गली है? नारी क्या निरी 'नियतिनटी' के मनमाने खेल की शिकार है? निरी एक कठपुतली!

सहसा उसके मन मे पूर्वस्मृतियो के कई बिखरे-से टुकड़े भीड़ बनकर जमा होने लगे : घर वालो के उल्लास भरे कहकहे, भाई का बार-बार चिढ़ाना, उन्नीस बरस की सलज्ज युवती आभा का उत्सुक धड़कता हुआ हृदय, शहनाई और बैंड के स्वर, बंदनवार, फूलो के हार, वरमालाएँ या सिमटते, मुलायम, गले से लिपट डॅसनेवाले अनचाहे नाग-पाश। बगाली सहेली काजल ने उपहार में दी शंख की चूड़ियाँ, बनारसी साड़ियाँ, मिष्टान्न, भोज, हँसी-ठट्ठे। श्री की चित्रशाला में वह गुलाबी केशरी साँझ, जब आभा ने कहा—"हाँ, आपके स्टूडियो में जैसे एक और चित्र, वैसे ही मै तुम्हारे जीवन मे प्रवेश कर रही हूँ न?" और श्री के वे उच्छ्वास भरे, मादक, सुगंधित आश्वासन, जो दुनिया के आरम्भ से अन्त तक हर तरुण प्रेमी अपनी प्रेमिका को देते आया है। वह श्री के पहाड़ों में लंबे-लंबे सफर! विरह मे वह लंबी-लंबी उन्निद्र रातें। और उस समय का वह भावुकता-भरा पत्राचार। और दो वर्ष बाद प्रथम सन्तान की वत्सलताभरी आगमनी। और फिर सफर के सॅकरे रास्ते, एक ओर ऊँची-सीधी

चट्टान, दूसरी ओर गहरी खड्ड, वे सुख और छाया के, वसंत और बहार के, किरमिजी और सिन्दूरी रगों के दिन, जब मतवालो की तरह गाया—

प्रांगने मोर शिरीष शाखाय
फागुन मासे
की उल्लासे
क्लांति बिहीन फुल-फोटानेर खेला
क्षांत कूजन शांत बिजन संध्या-बेला।

संगीत और चाँदनी, ज्वार और चमेली, रेशम और सोने के वे सारे क्षण...आज ? आँख की ककरी, निरे रेत के कण बने मन को सालते हैं। पता नही कब, कैसे, कहाँ वे उड़ गये। क्या वे निरी सपनो की तितलियाँ थी, रंग-बिरगी, चटक, भड़कीली। या भोले उर की सहज प्रतीति का वह व्यंग था। निठुर, निर्मम, अमिट, अपरिवर्तनीय .

उसने अपने मन से इन पुरानी स्मृतियो की मेघमाला को हटाना चाहा जो भावना के आकाश को व्याप्त कर लेने वाली, बेमौसिम की घटा थी। उसके आते ही आकाश-वातास का कोना-कोना जैसे सार्द्र हो उठता। हवा मे जैसे दूर की सद्यस्नाता धरती की सौंधी गीली बास गूंज उठती, पपीहे की 'पी कहाँ' की पुकार केका के शत-सहस्त्र बर्हिनेत्र बनकर सप्रश्नता लिए नाचते, बनते, मिटते इंद्रधनुष्य की मुस्कुराहट से खिली उस करुणा की घाटी को क्षण भर 'दामिणि छोड़ी लाज' चौंधिया देती। और पुनः रोम-रोम मे से कुछ बाहर उकसकर, जैसे कहना चाहता कि नहीं नही, आभा कभी किसी की पत्नी नही रही (वह नहीं जानती किसी को आत्मसमर्पण करना। वह निरी निश्चल नयनो वाली पत्थर की प्रतिमा है, जिस पर बहुत सी बर्फ जमी है। जिसका काम तटस्थ, अविचल, अनासक्त दृष्टि से इस सृष्टि-व्यापार को देखते जाना भर है। उसका बाहर की इस संवेदनाराशि मे कोई साझा नहीं है। वह अभिशप्ता अप्सरा सी वहाँ यंत्रवत् अपना काम कर रही है। उसके दुष्यन्त ने अंगूठी पहचानने पर भी उसे अपनाने से इनकार कर दिया है। अग्नि-परीक्षा के बाद की वह सीता है, जिसने कचनमृग के चर्म की चोली पहननी चाही थी, इसीसे दुनियाँ के रजको

के हिसाब से उसकी 'चूनरी मे परि गौ दाग पिया !'... एक तमिल कहानी लेखक ने लिखा है कि राम द्वारा सीता का निष्कासन जब अहल्या ने सुना तो फिर से वह पत्थर बन गई...

आभा ने फिर मन को समेटना चाहा। और अपने पूर्व-जीवन की याद दिलाने वाले वे सब फोटो के आलबम, वे पत्र, वे कपडे और वे उपहार सब जैसे कहीं किसी 'सेफ़' के भीतर बन्द कर दिये थे, उसी तरह से अपने मन पर एक वजनदार इस्पाती कपाट लगाकर, वह अगले दिन के पाठ के बारे में सोचने लगी। आभा संस्कृत और हिन्दी पढ़ाती थी। कल सबेरे लड़कियो को उसे मनुस्मृति के बारे मे कुछ कहना था।

उसने मनमें कुछ कड़ियाँ जोड़नी शुरू कीं : मनु वैवस्वत, मानव का यह आदि पुरुष, 'प्रसाद' की कामायनी मे जिसे बड़ा भारी रहस्यवादी चिंतक बना दिया है, भारत के पहले बडे समाजविधानकार। उन्होंने हमारे देश के लिए कैसी-कैसी भारी श्रृङ्खलाएँ गढ़ीं : स्त्री और शूद्र न पढ़े। शूद्र के कानो मे वेद-श्रुति पड़ जाय तो गर्म शीसा उसमें डाल दिया जाय। शूद्र की 'श्रुतियॉ' फूट जायॅ तो! कोई बात नहीं। मनुमहाराज !! धन्य हो... बीसवीं सदी मे भी कई महाभागो के दिमाग के अवचेतन मे आप किसी अमीर की कोयला बनी अशर्फ़ियो पर पहरा देने वाले बूढे सॉप की तरह फन फैलाये बैठे हो। ओ रूढ़ियों के अंध आदि देवता ! तुम 'अनंत' हो !!...

फिर उसका मन कडुआ हो आया। उसने सोचा, इससे निस्तार का उपाय एक ही है कि 'मनुस्मृति' उठाकर उलट पलट कर उसके कुछ स्थल फि से याद कर लिये जायॅ। कुछ-कुछ अश तो अच्छे हैं ही : राजा के कर्तव्य। दंड और न्याय के विधान। हमारी सस्कृति के ये सुनहले अंश, बस लड़कियों को ये ही लिखा देंगे। और दूसरी बुरी बातो की ओर देखो ही क्यों ? "बुरा जु दुखन मै गया, मुझसा बुरा न कोय" हमारी पुरानी बुजुर्गानी सीख है। हमारी सारी हिंदू सस्कृति यों कानी है, यानी वह एक ही आख से देखना चाहती है। महास्वार्थिन ! मीठा-मीठा गप्प, कडुआ-कडुआ थूः थूः।

और लड़कियॉ पूछेंगी मनुस्मृति मे स्त्रियो की स्थिति के बारे में तो क्या

उत्तर दूँगी ? क्या चुप रह जाऊंगी ? फिर आभा के अवचेतन मन से एक चित्र उभर कर सामने आया। श्री तब मालवे का दौरा करके बहुत से चित्र बनाकर लौटा था। एक उदासिनी, सिर नॅवाये, एक हाथ से अपने खुले जूडे को और रोनी आखों को ढाँपे, सिमटी सी नारी-आकृति का शिल्प उसने अंकित किया था। वह कहता था उज्जयिनी के महाकालेश्वर के मदिर मे यह खडिता प्रतिमा पाई गई। और उस प्रतिमा के सिर पर रखा एक मजबूत पुरुष पैर उस आकृति को नीचे रौंद रहा है, इतना ही हिस्सा बचा था। पैर भी टूटा हुआ था। लोग कहते थे यह हनुमान के पैरो के नीचे दबी लंका है। कोई और अर्थ बताता। मातृसत्ताक समाज से पितृसत्ताक समाज की ओर जब हम बढे तब की प्रतीक प्रतिमा तो कही यह नहीं थी ? आभा ने हँसकर कहा था—"श्री, यह प्रतिमा तुम्हें अच्छी लगी होगी न ? इसमे तुम पुरुषों का सुप्त अहंकार प्रसन्न हुआ होगा. ."

श्री ने कहा था..."मुझे तो उस नारी-आकृति की करुण मुद्रा ने मोह लिया। इतने खुरदुरे, सदियों के आघात सहे, चट्टान से पत्थर मे से भी जैसे अब आँसू बरसूँ-बरसूँ कह रहे हैं।"

आभा ने तब उसकी बात अनसुनी करके कहा था—"उन आसुओं से उस पैर को क्या जो दृढ़ भाव से उसे कुचल रहा है !"

श्री ने तब बात टाल दी थी। शायद उसकी हमेशा की आदत के अनुसार आभा का हाथ जोर से दबाकर कहने लग गया था, बच्चों की तरह—"देखो, आकाश में ये नीलाग कैसे उड़े जा रहे हैं।"

आभा ने प्रश्नार्थक भौहें ऊँचीकर पूछा था—"नीलाग ?"

'हाँ, ये काले बादलों की पार्श्वभूमि में उड़ते जानेवाले नीले सारस। कितने अच्छे हैं !'

'हाँ, सुना है, सारस जोडे से रहते हैं।'

'और एक जब दूसरे को छोड़ देता है तो दूसरा...'

'दूसरा प्राण तज देता है. .'

स्मृतियों की बलाकमाला यों कब तक स्वच्छद उड़ने दी जायेगी ? ना,

ना, इस तरह सोचते जाने मे खतरा है। आभा ने फिर सभलकर सोचा कि इस तरह अनन्यता की, निष्कंप, निर्धूम दीपशिखा की दुर्मिल परिभाषा मे पड़ जायेगे तो कहीं उबार नहीं है। उसमे से कहीं बाहर निस्तार है ही नही। वहाँ रेत पैरो के नीचे से खिसकती जाती है, और तैरना न जाननेवाले के गले से ऊपर नाक-आँख तक पानी बढ़ा आ रहा है। सो जैसे सकट के समय, डरता-डरता कोई आदमी मंत्र-जाप शुरू करता है, उसी भाव से, बाहर से अविचलित, अत्यत संयत और धीरमति आभा ने मनुस्मृति उठायी और इधर-उधर, स्त्रियों के बारे मे कुछ मसाला मिल जाय कि जिससे कल क्लासरूम का काम पूरा हो, इस विचार से वह पुस्तक टटोलने लगी।

मनु द्रष्टा थे। बड़े दूर का भविष्य उन्होंने देख रखा था। तभी तो सहसा आभा का ध्यान इस श्लोक पर जाकर अटका—

विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वापरिवर्जितः
उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पति

अर्थ नीचे छपा था "दुश्शील, कामी या दुर्गुणी कैसा भी पति क्यो न हो साध्वी स्त्री को सतत पति को ईश्वर मानकर पूजना चाहिये।"

आभा ने किताब जोर से बद की और दूर फेंक दी।

फिर वह आँखें फाड़ फाड़कर खिड़की से सिमटते आ रहे अँधेरे की ओर देखने लगी। सब ओर सुनसान था। बादल धीवर-जाल से छितरे थे। आकाश के टोकने मे एकाध तारा मछली के पेट की तरह चमक रहा था। दूर नदी के कछार पर झाऊ के पेड़ चुपचाप, विनत, खड़े थे। हवा मे कोई कंपन नहीं थी। सब कुछ स्तब्ध था। विजड़ित और विमूर्छित। कालेज के होस्टल के एक कोने मे जहाँ दूसरी मजिल पर उसका कमरा था वहाँ से बड़ी दूर तक के रेतीले मैदान दिखायी पड़ते थे। ये रेतीले मैदान कितने शुष्क, कितने नीरस, कितने अर्थशून्य जान पड़ते हैं। पर पता नहीं कब वर्षा के दिनों मे इन्हीं मे हरियाली चमकने लगती है। मयसभा जैसे खेत उग आते हैं। कॉस अपने सफ़ेद तुर्रे हिलाने लगते हैं। उन्हीं मैदानो में से एक पगडडी पास के देहात को निकल गई है। दिनभर का हाट-बाजार करके लौटती हुई किसी बैलगाड़ी के चक्कों

की अनवरत ध्वनि और बैलो के गले के घंटियो का स्वर दूर से भी साफ सुनाई देता है। और वह भी धीमे-धीमे क्षितिज के पार ओझल हो गया। धुंध बढ़ी आ रही है। शाम के झुटपुटे मे होस्टल के बागीचे की क्यारियाँ भी जैसे खो गयीं। फूल और फूल का अतर जैसे मिट गया। सब पौधे एक ही धुंधलेपन मे सिमिट आये। धीरे धीरे यहाँ भी कालिमा छा जायगी। खिली और अधखिली कलियाँ अपने गधमधुर उच्छवास बहाती रहेगी। काले भ्रमर...

श्री काला-सावला था, उसकी आँखों की पुतलियाँ किसी भ्रमर से कम चचल नहीं थो। उन आँखो की बरौनियो को देखकर लगता था कि यह मधु का लोभी भौरा नही, मदछका, अपने छहों पैर दो-पंख शहद से सने, उड़ न सकने को मजबूर, अलसाने वाला भौरा है। और इसी बात पर तो श्री ने एक बार आभा से कहा था—"यह बहुत पिटा-पिटाया रूपक है आभा, कमल और भौरा। पर इन कवियों को और कुछ सूझता ही नही।"

"भ्रमरवृत्ति जो उनके मन मे है।" आभा ने चुटकी ली थी।

"तो क्या स्त्रियाँ भी तितलियो जैसी नही होती?"

"श्री, चंचलता का ठेका सिर्फ एक जाति ने तो नहीं लिया है।"

"मन की और पारे की गति एक सी है न आभा। जैसे अभी तुम बात तो मुझसे कर रही हो, पर संभव है कि तुम ध्यान किसी और का .."

आभा ने श्री को बात पूरी नहीं करने दी। उसका मुँह अपनी हथेली से जोर से दबाकर कहा था "छिः। हर वक्त यह मजाक कैसा।"

भ्रमर। भ्रामरी...भँवर मे पड़ गई है नाव! "बाधो न नाव इस ठाव, बंधु" ..

हाँ, भ्रमरगीतसार भी तो कल पढ़ाना है। फिर आभा ने सभलकर कमरे का अंधेरा दूर करने के लिए स्विच दबाया। और नित्यक्रम की भाँति वह अंदर गयी। एक आले में श्री की एन्लार्ज फोटो थी। उसकी ओर देख कर वर सूखी हँसी हँसी। परतु यंत्रवत् उसने दो अगरबत्तियाँ जलायी और धूपायन में उन्हे रख दिया। वह उस समय श्री के फोटो को नही देख रही थी अपने उस पतिदेव को नहीं देख रही थी, जिसने उसे बेबी के रूप मे यह कन्यारत्न दिया। और बाद में जो निर्दय बनकर उसे उतरन की तरह छोड़ गये। क्षण भर वह अपने

बचपन के सारे सस्कारो को जैसे दुहरा रही थी। नाता ने तुलसी के चत्वर के पास उसे पूजा करना सिखाया था। तुलसी की मंजरियो की वह उग्र, हरी, सौरभ। उसे अभी भी याद है कि पूजा करते समय माँ कहती थी "पूजा कर्तव्य की भावना से की जाती है। कुछ उसमे चाहा नहीं जाता। सकाम पूजा का कोई फल नही।"

माँ भी इसी तरह तिल तिल गलगलकर धरती से उठ गयी। भगवान ने दया की। पिता तो सदा शराब मे धुत्त, निष्कचन, घर आने पर मरते दम तक मार-मार कर माँ की हड्डी पसली एक करते रहते। एकाध बार आभा बीच मे बचाने गई तो उसे भी उन बेतो का शिकार होना पडा। माँ ही थी कि चुप रह जाती। नील हाथो पैरो पर उभरते, पर उफ् नही करती। और ऐसी कितनी माँओं ने यहाँ अपना जीवन पतिदेवता रूपी पथरीली मंदिर-दहेली पर उत्सर्ग नही कर दिया!

पर फिर आभा का विद्रोही मन द्वन्द्व से जैसे मथ उठता। क्या था उसका अपराध, जो पति ने उसे छोड़ दिया? यह पाँच बरस की बसी-बसायी गृहस्थी उजाड़ते हुए उसे शर्म नही आयी। यह फूल सी कोमल तीन बरस की बेबी उसे छोड़ते हुए श्री के मन मे कैसे कभी वात्सल्य का एक कण भी नहीं जागा! फिर उसका मन तर्क करने लगा—अच्छा यह भी माना कि श्यामा मुझसे अधिक सुंदरी है, कलावान, प्रतिभावान और गुणमयी है। परंतु क्या इसका अर्थ यह होता है कि मेरी पूजा को वह ठुकराकर चले जाते, कुचलकर, यो! आखिर क्यो?

आज उसके मन मे यह क्षीण विद्रोह की भावना जगी कि इस निष्प्राण तस्वीर को मै अभी तक पूजती आ रही हूँ? बेबी को बता रही हूँ कि "ये तुम्हारे पिताजी हैं।" और उसके पूछने पर कि "वे कहाँ हैं?" मै प्रश्न को टालती आ रही हूँ। वह बार बार पूछती है क्या पिताजी अब कभी नही मिलेंगे, तब मन अदर से हाहाकार कर उठता है! कोई उत्तर मेरे पास नहीं है। उसी प्रतिमा को, उसी छबि को, सहसा उसका मन हुआ, 'क्यो न उठाकर फेंक दूँ?' यह सब

पूजा-अर्चा, यह सब युग-युग का छलावा, यह जन्म-जन्मान्तर की प्रवचना, यह इकतर्फा, प्रत्याशाहीन, प्रतिदानरहित, निरंतर देते ही जाना......

क्यों ? आखिर क्यो ?

क्या नारी और नदी की यही एक सी गति है ? 'शुधू दाओ.. शुधू दाओ'...उसके लिए लौटना मना है।

यह विचार क्षणभर उसके मन मे जागा कि दूसरे ही क्षण पता नहीं क्यो वह एकदम कठोर हो आई। उसने दूर से आती हुई बेबी की आवाज सुनी थी। वह पुकार रही थी—"माँ, माँ।"

"क्या है री। आज बहुत खुशी मे है ?"

"माँ, तुमसे मिलने कोई आये हैं ?"

"कौन हैं। बाहर बैठके मे बैठाओ। मै आई।"

आँखे पोंछकर, आँचल संवारकर आभा बाहर के कमरे मे आई। उसने देखा एक नवयुवक है। साफ़-सुथरे कपड़े पहना है। चेहरे से कोई बुरा भाव नहीं दिखाई देता। पढ़ा-लिखा, समझदार और सुशील जान पड़ता है।

युवक ने अपना नाम बताया—"सत्यकाम"।

आभा ने पूछा—"कहिये, कैसे आना हुआ।"

युवक ने कहा—"बात यह है कि मेरी बहिन आपके यहाँ एडमिशन चाहती है। हमारे चाचा की हाल में यहाँ बदली हुई है और मैंने सुना कि कालेज में आपका प्रभाव सबसे अधिक है। आपसे प्रार्थना करने के लिए मै आ ही रहा था कि राह मे यह बेबी मिल गयी। बेबी काफी बातूनी है। उससे पता चला कि शाम को भी आप बाहर कहीं नहीं जाती। आप बहुत काम करती रहती हैं। घर का भी। स्कूल का भी। लिखने पढ़ने में आपका इतना मन लग जाता है ?"

"बेबी !"

"कहो माँ ?"

"क्यों री शैतान ! तुझे इतनी सब बातें करने के लिए किसने कहा।"

"ये पूछते जाते थे माँ, तभी मैंने कहा"

"आप कुछ लेंगे ? चाय, शरबत या..."

"नहीं, मै यह कुछ नहीं लेता। मैं सिर्फ काम से आया था। विद्या मेरी बहिन का नाम है। और बिना आपकी मदद के यह काम नहीं होगा।"

"उनकी पहले पढ़ाई कहाँ हुई है ?"

"पहले तो लहौर मे पढ़ती थी। अब तो हम रैफ्यूजी हैं।"

"अच्छा। तो उनके पास सर्टिफिकेट हैं।"

"हाँ, प्राइवेट पजाब से इटर किया था, वह है। आपके कालिज मे थर्ड इअर मे दाखिल होना चाहती है।"

"देखिये, मेरे पास उन्हें कल भेज दीजिए। मै कोशिश करके देखूँगी।"

"धन्यवाद।" कहकर सत्यकाम उठा और उठते समय नमस्कार करते हुए वह हँसा।

यह कैसी हँसी है ? आभा ने सोचा। श्री भी तो ऐसा ही हँसता था। क्या कहीं इन दो मुस्कुराहटों मे साम्य है : शायद हाँ, शायद नहीं। केवल मन का धोखा है। सभी पुरुष एक से हँसते हैं। मनु महाराज। आपने तो सभी स्त्रियों के भाग्य मे एकसा आँसुओ का दीप जलाने का विधान पत्थर की लकीर की तरह लिख डाला। पुरुष का काम सिर्फ हँसते रहना और पुजापा लेना ही है क्या ?

आभा फिर अपने कमरे मे अकेली कागजों से उलझने लगी। ऐसे समय आभा का प्रिय उद्योग होता है कुछ तुकतान जोड़ लेना। कविता उसे कहना कठिन है। योंही वह लकीरें खीचने लगी और कुछ यों बना :

क्लान्त तन

सुन्न मन

ताकती हूँ गगन।

चुप मगन।

है कहीं —

भी नहीं

पंथ हो जो सही

पूर्णतः ।
पूर्णता ?
है भला क्या, बता ?
हीनता
मिश्रता . . .
है जगत् में वृथा ।
है जगत् में व्यथा
(यह जगत् मैं स्वतः)
है व्यथा भी सघन. ..

इतना लिखकर आभा रुक गयी । 'क्लान्त तन, खिन्न मन, ताकती हूँ गगन ' सोचते सोचते न जाने कब वह सो गयी ।

. .... .

: २ :

. .. .

सबेरे उठकर आभा को लगा कि जैसे कविता उसके मन लायक नहीं बनी । इसलिए उसने उसमें और कुछ जोड़ा, कुछ काटा, फिर लिखा । जो जोड़ा वह यह था ।

सन्दली
चाँदनी
रंग वो गन्दुमी
स्वप्न की
स्वामिनी
है कहाँ यामिनी ?
सुन्न मन
सुन्न तन
सुन्न है यह गगन
गा रही हूँ मगन :

'सुन्न महल में नौबत बाजै
किन्नरी बीन सितारा।
नीलमनभ में ध्रुव बिराजै,
टिमटिम एक सितारा।'

इतना लिखकर आभा ने कविता पर शीर्षक की समस्या को टालने की दृष्टि से लिख दिया—'शून्य'।

परन्तु क्या जीवन मे शून्य बन जाना इतना सहज है?

और नित्यकर्म मे वह लग गयी। चाय पीकर वह फिर मनु के देश काल की चिन्ता में पता नहीं कितनी देर तक पढ़ती रही कि सहसा उसका मन पति, पत्नि, विवाह इस सारी संस्था से जैसे उचट गया। आभा का मन कठिन हो आया। वह बड़ी देर तक भीत पर टँगे श्री के बडे से चित्र की ओर देखती रही। यह चित्र खुद श्री ने बनाया था अपने ही हाथों से अपना चित्र। कहता था—यह वैन डाइक की तरह है। होगा! श्री ही तो कहा करता था कि हम सब चाँद की तरह हैं। अपनी जिन्दगी का उजला पहलू हम सिर्फ दिखाया करते हैं।

आभा ने अनमने भाव से रेडियो खोल दिया। आसी की गजल कोई गा रहा था।

हाय, इक चांद के टुकडे ने सितारों की तरह
मुद्दतों शाम से तासुबह जगाया हमको॥
हम न कहते थे कि ऐ दिल न किसी पर जी दे
जिंदगी रोग है अब तुझको बता या हमको॥
देखिए खाक में हम मिल गये मानिन्द सरश्क
आपने किसलिए आँखों से गिराया हमको॥

क्यों है यहाँ, वहाँ सब ओर इतनी पीड़ा? इतना दर्द? इतनी वेदना? ...क्या उससे कोई निस्तार नही है, उबार नहीं है? किसने यह जीवनदुकूल इतना मैला बना दिया है? कौन है उसका निर्माता और उसका समेटने वाला?

आभा सोचते सोचते कहीं दूर खो गयी। शायद हम ही इस दर्द के सृष्टा और शास्ता हैं।

दरवाजे पर सहसा किसी की थपकी ने उसकी तन्द्रा तोड़ दी। जाकर द्वार खोला। एक लड़की, सुपुष्ट, ऊँची पूरी, गाल स्वास्थ्य से लाल, आँखों मे निर्भीक ढिठाई, शलवार कमीज चुन्नी पहने खड़ी थी। कुछ अतिरिक्त रंगी हुई, अलंकृता। पीछे उसका भाई सत्यकाम खड़ा था। नमस्कार हुए, परस्पर परिचय हुए और बाद मे काम की बातें हुईं। विद्या को दाखिल करने मे क्या क्या कठिनाइयाँ हैं आभा ने बताईं।

और भी इधर उधर की बातें होती रहीं। सत्यकाम की बातचीत से वह बड़ा हंसोड़ और खुले दिल का व्यक्ति जान पड़ा। हर बात पर कोई न कोई लतीफा कहता जाता।

धीरे-धीरे आभा और सत्यकाम की भेंट बार-बार होने लगी। विद्या और बेबी में भी घरेलूपन, घनिष्ठता बढ़ती गई। तब एक दिन सत्यकाम ने प्रस्ताव रखा कि पिकनिक के लिए कहीं चला जाय। और शहर से बाहर एक छोटी सी नदी के किनारे जो घनी आमराई थी उसी की बात सबसे पहले मनमे उठी। जगह बहुत अच्छी थी और तै हुआ कि आभा अपनी सहेली मीनाक्षी से पूछेगी। यदि वह साथ आई तो अच्छा गाना भी सुनने को मिल सकेगा। और सत्यकाम ने कहा कि लखनऊ से उनके एक शायर दोस्त आ रहे हैं, उन्हे भी साथ में वे ले आयेंगे।

पिकनिक का प्रोग्राम यह था कि सबेरे से सब लोग वहाँ चल देंगे। दिनभर वहीं बितायेंगे। थोड़ी देर के लिए सब शहराती लोग शहर की बातें जैसे भूल जावेंगे। संस्कृति के नामपर जो बनावटी मुखौटे स्त्रीपुरुष पहने हुए घूमते हैं उनसे थोड़ी देर के लिए मुक्ति मिलेगी। सहज, अकृत्रिम, मूल भाव जैसे उभर उठेंगे। और जीवन के अवरुद्ध प्रवाह का कूड़ाकरकट थोड़ी देर के लिए हटकर पानी फिर दुगने वेग से खिलखिल बहने लगेगा : राह के पत्थरों को ठुकराता, लाँघता उनसे टक्कर लेता।

पिकनिक मे बात से बात चल पड़ी मित्रता पर। मीनाक्षी का कहना था

कि जैसे पुरुषों के कई मित्र होते हैं स्त्रियों के उतने अधिक मित्र नहीं होते। स्त्रियाँ स्वभाव से कुछ अंतर्मुखी होती हैं।

आभा ने कहा—"सभी स्त्रियाँ ऐसी नहीं होती। हमारी सहेली केतकी के तो..."

सत्यकाम ने बात काटी—'तो सभी पुरुष भी इतने अधिक सामाजिक वृत्तिवाले नहीं होते। और कई बार मित्रता निरा स्वार्थ का बहाना जो होता है। दोस्ती जो निस्वार्थ हो कहाँ मिलती है?'

अलताफ साहब ने बेतकल्लुफी से फरमाया—

"दोस्ती का परदा है बेगानगी
मुंह छिपाना हमसे छोड़ा चाहिये।"

अलताफ साहब हर बात कुछ सस्ते और भोंड़े ढग से कहते थे। तरक्की-पसंदगी की उनकी यही परिभाषा थी। आभा को यह सब पसंद नहीं था। अलताफ मीना को गाने के लिए बहुत इसरार करने लगे तब आखिर तंग आकर आभा ने कह ही तो दिया—"शायर साहब, आप सब लोगों को इतना भरा-भरा हुआ क्यो समझते हैं, कि जहा जरा सी फरमाइश हुई आप अपने लंबे-लवे कलाम सुनाने लगे। क्या जरूरी है कि आदमी दूसरे की इच्छा हमेशा पूरी ही करे। अगर वह न कर पाये तो क्या उसकी मजबूरी समझने की चीज नही है?"

अलताफ साहब ने फिर कहकहा लगाया "वाह साहब, सोसाइटी मे तो दूसरों के लिए थोड़ा बहुत सैक्रिफाइस......

आभा ने तुनककर कहा—"और मान लीजिये कोई अपने उसूल पर रहना चाहे तो।"

हिकारत से हसते हुए शायर बोले—"उसूल क्या होता है? सब कुछ मटिरियालिस्टिक है आभा जी। उसूल आखिर हमारी फिजिकल नीड्स से ही तो बनते हैं।"

बहस को आगे जारी रखना मुनासिब न समझ कर सत्यकाम ने कहा—'शायर साहब, छोड़िये भी इन नीड्स को। यहाँ हम जरा हंसी खेल करने के

लिए जमा हुए हैं। डिबेट करने के लिए नही। देखिये देखिये, वह विद्या कहाँ से इतने सारे आम के मौर तोड़कर लाई।"

'ओ : बेबी भी।'

और फिर सब हसी ठठ्ठे मे डूब गये। मीना और शायर शतरंज खेलने लगे। बच्चो ने पेड़ोपर चढ़ना और कूदना शुरू किया। तब, ताश मे मन नही लगता, कहकर आभा और सत्यकाम टहलते हुए अमराई के एक घने छायादार हिस्से की ओर बढ़ गये जहाँ नदी के पानी से आम की डालें छूती थी। और उसके बाद पता नहीं कहाँ खो गये। बहुत देर तक वे नही लौटे।

दिन चढ़ आया। और खाने के वक्त सब की तलाश होती रही. तब वे बड़ी खोज के बाद मिले पास के एक देहात मे।

खाने के बाद मीना ने एक गाना गाया। कोई दुखभरा गाना था, जो उसकी अपनी भाषा में था। उसका स्वर बड़ा दर्द भरा था। और गाने का भाव जो उसने टूटी फूटी हिन्दी मिली अंगरेजी मे बताया वह इस तरह से था :

"माना कि तुम मुझे नही चाहते, फिर भी मेरे चाहने को तुम कैसे रोक सकते हो...

"बनतुलसी की मदिरसुगध कॉटे की बागड से नही रुकती।

"माना कि तुमने अपने दिल से मुझे निकाल दिया है, फिर भी मेरे दिल मे जो तुम्हारी तस्वीर है वह पक्के रंगो मे बनी है और वह आंसुओं से नहीं धुलती।

"यह प्रतिमा तुम्हारी उपेक्षा के घन की चोट से भी नही टूटेगी। क्योंकि यह प्रतिमा सप्तधातु की है। विरह की आगसे यह गलती नही, और निखरती है।"

गाना सुनकर अलताफ ने, जिसमे सौदर्य की सूक्ष्मता ग्रहण करने का माद्दा भोथरा हो चुका था, वही सस्ती हॅसी हॅसकर चार पंक्तियॉ ग़म पर पढ़ दीं। शायद वे ग़ालिब की थीं और खासी चुभती हुई थीं।

यों पिकनिक पूरी हुई। और सॉझ के झुटपुटे मे सब लोग लौटे।

आभा एक दिन मे इतने सारे नये संवेदनो को झेलने की आदी नही थी। तन थका था, पर मन उतना ही सक्रिय था। उसे नीद नही आ रही थी, और

"कहर हो या बला हो जो कुछ हो।
काश कि तुम मेरे लिए होते॥
मेरी किस्मत मे ग़म गर इतना था।
दिल भी या रब कई दिये होते॥"

अलताफ़ ने गाई हुई ग़ालिब की ये पंक्तियाँ बार-बार थकी हुई आभा के मन मे उभर-उभर कर सामने आई। क्या सत्य के प्रति उसका आकर्षण फिर से आग के शोलो से भरी खाई में गिरने के बराबर था।

उसका मन न जाने कैसा-सा हो आया।

आभा की आदत थी कि जब उसके मन मे इस तरह पके फोड़े की तरह टीस उठती तो वह श्री से हुए उसके पुराने पत्रव्यवहार को उठाकर पढ़ने लगती। सात बरस पुराने वे पत्र! अब बे-मानी थे। उनका आनंद अब केवल शास्त्रीय (एकेडेमिक) आनंद था, क्योकि उनमे अतर्निहित आत्मीयता कहीं खो गई थी। फिर भी उसने श्री का एक पत्र उठाया। कई बार उसने यह पत्र पढ़ा था। पर वह कभी अघाई नही थी। जितनी बार वह इसे पढ़ती, उतनी ही वह कोसती जाती थी पुरुष जाति को, उसकी अस्थिरता को, उसके चचल मन को, उसके झूटेपन और प्रवचक वृत्ति को...

उसने फिर से पत्र पढ़ना शुरू किया : सरनामा स्पष्ट पढ़ा :

प्रिय आभा,

(बीच के शब्द जैसे खो गये। कुछ तरलता आँखो में झलक आई। और उस झिल्ली मे से उसे कुछ नही दिखाई दिया सिवा पत्र के अंतिम स्नेह भरे आश्वासनो के)

तुम्हारा अभिन्न
श्री

अनपढ़ा पत्र तह करके आभा शून्य दृष्टि से दीवार की ओर ताकती रही।

8

यहीं आभा को केतकी का ध्यान हो आया। केतकी उसकी सहपाठिनी थी। सब बातो मे तेज-तर्राट। न केवल लक्ष्मी की उसपर कृपा थी और इस कारण से वह आधुनिकतम फैशन मे लैस, 'शो-आफ' कर सकती थी। पर वह मेधावी भी थी। उससे कई बार आभा की बहस भारतीय नारी के आदर्श पर, स्त्रियो की स्वतन्त्रता पर, अविवाहित जीवन बिताने पर, जीवन के आदर्शों पर और सौदर्य कला सम्बन्धी रुचियो में विभेद पर हुई थी। बहस में किसी नतीजे पर वे नहीं पहुँचते थे। बल्कि दोनो के मन मे दो ध्रुवों का सा अतर था। सत्यकाम ने दिल्ली चलने की बात उठाई, तब वह यही सब सोचती रही।

बड़ी देर तक मानसिक द्वद्व के बाद आभा ने दिल्ली जाने की बात पक्की की। सोचा था कि वहाँ उसकी सहेली कतकी अब श्रीमती निर्मलराम बनी है, उससे भी भेट हो जायगी।

और दोनो दिल्ली जाकर एक होटल में ठहरे। वहाँ केतकी ने फोनपर दावत का निमत्रण दिया।

सत्यकाम के साथ आभा दिल्ली आयी तो। पर उसे मन मनको यह बात अच्छी नहीं लगी। उसके मन मे सहसा न जाने कितने पुराने चित्र तैरकर उभर आये। तब वह श्री के साथ एक बार दिल्ली आयी थी। श्री ने अपने चित्रो की प्रदर्शनी वहाँ की थी। श्री पर फूल मालाएँ बरसायी गई थीं। लंबे लबे भाषण उसकी कला पर हुए थे। और किसी ने यह जानने की कोशिश नहीं की थी कि श्री आदमी कैसा है? उसका भी घरबार है या नहीं? वह भी विवाहित है या नहीं?

और इसी दिल्ली में जहाँ श्री अब खेती के विभाग में किसी ऊँचे पद पर है, उस बार श्री और किसी श्यामा के प्रेमजाल में फँसा था, जैसे शायर अलताफ मीना के। और यह प्रथम दर्शनवाला प्रेम, यह निरी देहासक्ति, यह मूलतः पाशवी, अदम्य, विकार...आभा सोचती है क्या इतने हजार वर्षों की 'संस्कृति' के बाद भी मनुष्य का विकार-प्रदर्शन ज्यों का त्यो बचा रहा है? उसमें कोई अन्तर नहीं आया? क्या बुद्धि की हवा ने उस आग को लहकाया भर है?

फिर क्यो मनुष्य अपने आपको सस्कृत कहता है ? क्या वह स्वयम् भी उसी रपटनभरी गैल की शिकार नहीं बन गयी थी ।

उस अमराई मे, उसने 'सहकार' की छॉह क्यों चाही थी ? क्या वह पाप था ? क्या सब पुरुष स्त्रियो को एक ही दृष्टि से देखते हैं ? प्रेम का ऐसा निकृष्ट रूप भी हो सकता है ?

पाप क्या है ? क्या केवल मन का धोखा है ?

अलताफ हुसैन ? छीः छीः...परन्तु सत्यकाम ?

रात को उसे बहुत देर तक पढ़ने से भी सतोष नहीं मिला । फिर पेंसिल लेकर वह अपनी कविता की नोटबुक मे लिखने लगी :

आज निशा के मध्य प्रहर में
कोई स्मृति जागी अंतर में ।

कुछ भी किये न आती है तंद्रा पलकों पर
रह रह नयन भटक जाते है उसी छटा पर, उन झलकों पर ।
तुमने रखे अधर रखे इन स्नेहभरी कोमल अलकों पर
और लिया था मृदुल तुम्हारा कलापूर्ण कर कंपित कर में ।

सिहर उठे थे सहसा प्राणों के सब बन्धन होकर ढीले
जैसे किसी अन्ध आग्रह ने कहा रूप की मदिरा पी ले ।
पर क्यों सहसा गीले नयन सघन नभ नीले ।
जागी क्यों सव्रीडा पीड़ा, स्नेहदान के मधुनिर्झर में ?

सघनकुंज छायातल तुमने तोड़ी पापपुण्य की सीमा
फिर से वही ध्यान ज्यों बहता प्रातसमीरण धीमा धीमा
सचमुच यह अपराध हुआ मेरा ही किम्वा
युगों युगों का संयम खोया, कैसा ज्वार उठा सागर मे ।

यह गीत लिखकर आभा ने जैसे मन की सारी घुमड़न से छुट्टी पा ली ।

दूसरे दिन उसने चिट्ठी लिखकर श्रीमती केतकी को सूचित कर दिया—"आज शामको मैं आपके आयोजन में न आ सकूँगी, खेद है। मुझे कुछ आवश्यक काम है ।"

मन की बात यह थी कि वह वहाँ नहीं जाना चाहती थी जहाँ श्री जाय।

....

: ३ :

"दिल्ली मे क्या देखा ?

केतकी के घर रविवार सन्ध्या को जो आयोजन हुआ, उसमे एक छुट भैये नेता जिनका नाम माधो प्रसाद था और चिढ़ाने के लिए मित्र लोग कहते थे 'एम० पी०' वे भी आन फँसे थे। उन्होने यह प्रश्न अलताफ हुसैन से पूछा।

अलताफ ने अपने तरीके से गर्दन को झटका देकर पेशानी पर लटके लम्बे बालो को और आने लटका लिया, और अचकन के बटनों से खेलते हुए जवाब दिया "जिन्दगी।"

जिन्दगी की हर आदमी की अपनी परिभाषा होती है। खास तौर से बड़े शहर मे हर आदमी की अपनी परेशानी होती है, अपने वैचारिक काट होते हैं। अपने सास्कृतिक मान होते हैं। दिल्ली-दरबार के समय व्यग से कवि ने पूछा था 'दिल्ली मे क्या-क्या देखा ? तब दर्शनीय लाट और कनाट जो भी रहा हो, आजकल तो यात्री कुतुब, बिड़ला मन्दिर, राजघाट, लालकिला और ससद-भवन देख लेते हैं।"

"आपने बारहखम्भा देखा ?" एम० पी० साहब का शिशुवत् प्रश्न।

"खम्भा तो वहाँ कोई भी नहीं है। सूली का भी नही।" पूरी बत्तीसी दरसाते हुए शायर ने उत्तर दिया।

परिहास में केतकी ने कहा—"जैसे बम्बई के धोबी तालाब मे कोई तालाब नहीं है वैसे ही बारहखम्भा में कोई खम्भा नहीं।" और उसे सहसा एक बंगला लोकोक्ति दुहराने की इच्छा हुई "कोलकाता शब भूलेई भरा, बोउ-बाजारे ते बोउ पाबे ना, श्याम बाजार थेके राधाबाजार दूर !"

शायर को जैसे कुछ उकसाहट मिली। बोले "यह नकली नामो की नकली दिल्ली है।"

एम० पी० ने कहा—"इनकी जिन्दगी भी नकली है।"

रोज़ रोज रेडियो पर अनिच्छा से मधुर काफी गा कर और कड़ुई काफी पीकर सुधीर की वाणी में कुछ अतिरिक्त कड़ुवाहट आ गयी थी। वह जोश से बोल उठा—"किस की जिन्दगी नकली है? नयी दिल्ली की यह मोटर वालों की जिन्दगी? यह सदा गियर बदलती, चायघरों और पानगृहों में जाकर समाप्त होनेवाली जिन्दगी? यह भी कोई जिन्दगी है!"

शायर कुछ अप्रतिभ हुए। शेरवानी के बटनों पर से उन्होंने हाथ उठा लिया और कुर्सी के हत्थे यों मजबूरी से पकड़ कर बोले, मानो वे हत्थे न हो कर उस पाँसे सी जिन्दगी के प्रतीक हों जिस पर से उनका कब्जा छूटा जा रहा हो—"शाम को नयी दिल्ली में कैसा रंग और रूप दिखायी देता है। सच्चा कास्मोपालिटन कल्चर यहाँ देखिए। रस और नाद, गन्ध का समाँ।"

सत्यकाम आज जैसे चोट करने पर तुला था..."यहाँ रंग चेहरों पर पुता रहता है, दिल में नहीं उतरता। यहाँ रूप छलना और दिखावा है। एक नूर आदमी, दस नूर कपड़ा। यह जिन्दगी नहीं, चलती-फिरती ममियों की शव-पूजा है।"

केतकी ने बीच ही में अकारण छेड़ दिया—"आज श्यामा जी नहीं आयी अभी तक।"

शायर साहब ने बातचीत कुछ गम्भीर होती देख, उसे दूसरा मोड़ देना चाहा—"तभी सत्यकाम इतने चहक रहे हैं।"

फ्लूटिस्ट सुधीर केतकी की ओर देखकर बोला—"श्री उसे अपनी कार में लाने वाले थे न।"

केतकी ने साभिप्राय कहा..."हाँ, कार तो राह में फेल भी हो जा सकती है।" और इसके बाद जैसा ड्राइंग रूम की ऐसी पार्टियों में होता है, मंडली दो-दो तीन-तीन के छोटे-छोटे गुटों में बँट गयी। सत्यकाम जोर से कह रहा था—"नयी दिल्ली की आलीशान दूकानों और बुर्जुआ वासियों से अलग एक दुनिया भी तो है, और तादाद में वह काफी बड़ी है..."

एम० पी० ने, जैसे कोई रहस्यवादी कविता सुन रहा हो, गर्दन हिलाकर कहा..."हाँ, तादाद जन तन्त्र में बड़ी चीज है।"

सत्यकाम में, अप्रासगिक रूप से, मानों कोई मजदूर नेता भूत बन कर समा गया था। उसने नाटकीय ढग से कहा—"जी हाँ, ये सैकड़ों नौकर, बावर्ची, बैरा, आया, खानसामे, झाड़ूवाले, चौकीदार, महरियाँ, यह कमकरों की दुनिया जिनमे स्त्रियाँ, बच्चे, बूढे सभी काम करते हैं। यही असली दिल्ली की दुनिया है।"

लखनऊ के तरक्कीपसन्द शायर, पियक्कड़, आशिकमिजाज अल्ताफ हुसैन साहब बहुत खुश हुए। एकदम कह उठे..."इस सरमायादारी निजाम ने आदमी को मशीन बना दिया है।..."

एम० पी० साहब चुप नहीं रह सकते थे। वह जैसे बोलने के लिए अवसर की ताक में ही थे।—"ऐसे मशीनी लोग संस्कृति का, कला का निर्माण नहीं कर सकते।"

शायर ने धीमे से कहा—"दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना।"

सत्यकाम घूर घूर कर एम० पी० की ओर देखने लगा। और ऐसी विद्रूप भरी, हिकारत की विषबुझी मुस्कान के साथ उसने फुफकार कर कहा "संस्कृति! मानो वह कहना चाहता हो कि इस चिकने-चुपड़े चर्बी के घड़े को क्या पता है संस्कृति के सृजन का दर्द!

और किसी हद तक यह बात सही थी। केतकी की नौकरानी जमुना के लेखे वहाँ जमे भद्रजनों का 'संस्कृति' की लच्छेदार बातें करना बाल की खाल निकाल कर लफ्फाजी का कालीन बुनना जितना निरुपयोगी था; वैसे ही एम० पी० साहब को भी वहाँ चलने वाली दिलचस्प कला चर्चा एकदम जादू-मन्त्रों की तरह जान पड़ रही थी। एम० पी० साहब की शिक्षा-दीक्षा अल्प थी। और 'संस्कृति' का अर्थ उनके निकट सबेरे पाँच बजे उठना, ठंडे पानी से नहाना, सूर्य-स्नान, स्वाध्याय, दूध खजूर और मुसम्मी के रस का सेवन, प्रार्थना में कुछ धार्मिक ग्रन्थों का पाठ और नैष्ठिक रूप से केवल 'हरिजन' पढ़ना था। यही उनका नित्यकर्म था। सन् तीस, सन् चालीस और सन् बयालीस में तीन तीन महीने वे जेल भी हो आये थे। भाई की कपड़े की

दूकान अच्छी चलती थी; और इनका सारा जीवन ग्राम, नगर, प्रान्त और जनपद की राजनैतिक जोड़-तोड़ यानी दलबन्दी मे ही बीता था ।

सस्कृति और ललित-कला के सम्बन्ध में एम० पी० के मान बहुत सीधे और सहज थे । चित्रकला मे उनकी पहुँच देश के नेताजनो के रगीन चित्रो तक थी; सगीत के मामले मे उनके आर्यसमाजी संस्कारो ने उन्हें सिखाया था कि जो उपयोगिता से भरा नहीं हो, वह संगीत नही है । सो सर्वोत्तम सगीत उन्हे 'विजयी विश्व तिरगा प्यारा' लगता था : और उसके बाद 'जय जगदीश हरे' की आरती भी बुरी नही थी । कविता उनकी समझ मे नहीं आती थी; पर जेल में एक भावुकजी भावुकजी नाम के सज्जन थे, उनकी कविता भी उन्हे बड़ी ओजपूर्ण और राष्ट्रभक्ति-भरी लगती थी । स्थापत्य नाम की किसी कला का उन्हे अन्दाज नही था, क्योंकि स्वराज के बाद जो सीमेंट और लोहे और टीन के परमिट उन्हे मिल गये थे उन्ही से बने किसी भी आकार-प्रकार के घर से उनका काम चल रहा था ।

सो एवगुणविशिष्ट एम० पी० श्रोता और दर्शक अधिक थे । संस्कृति की बात पर शायर ने अफयून भरे स्वर मे कहा—"तहजीब और तमद्दन की सच्ची क्रीएशन सोशलिस्ट एकानामी में ही ."

केतकी उबल पड़ी..."अभी आप इन गरीबो को मशीन की तरह बता रहे थे । आपका समाजवाद-साम्यवाद जो भी 'वाद' हो, आ जाने पर क्या सस्कृति और सृजन के लिए कहीं गुंजायश रहेगी ? सब एक काट के, एक तरह के, एक सी शिक्षा के आदमी । यह स्टैंडर्डाइजेशन..."

बात काटकर सत्यकाम बोला, "मशीन आदमी को अधिक सुसस्कृत बनायेगी । हमें इस भूख, अकाल, गरीबी और बेकारी से भरी समाज व्यवस्था की निस्बत वह स्टैंडर्ड..."

केतकी से रहा न गया..."आपको अपने शरीर की रक्षा के लिए आत्मा की मौत मजूर है ?"

शायर ने सिगरेट के धुएँ का कुंडल हवा मे छोड़ते हुए कहा,... "आत्मा ? वह सोलहवीं सदी का कान्सेप्ट है ।"

एम० पी० साहब को लगा जैसे केतकी के रूप मे उनको दैव-प्रेषित समर्थन मिल गया हो। बोले "सस्कृति तो स्वतन्त्र आत्मा ही बना सकती है। देखिए, जब तक हम अंग्रेजो के गुलाम थे, हम उनकी नकल उतारते थे। सस्कृति तो मौलिक होती है, उसमे नकलीपन से काम नही चलता।"

मगर केतकी ने तेजी से कहा—"सच्ची संस्कृति जनता बनायेगी। वह नेताओ के बनाने से नहीं बनती।"

सत्यकाम ने वाग्युद्ध छेड दिया,..."जनता और आत्मा ये दो परम्परा-विरोधी बातें कैसी कहती हो केतकी।"

"जनता से मेरा मतलब है जनसाधारण। हर व्यक्ति को शिक्षित और सुसस्कृत बनना होगा। नही तो संस्कृति की चर्चा करने वाले तो बहुत मिल जायगे।"

अधीर होते हुए फ्लूटिस्ट सुधीर ने कहा—"श्यामाजी अभी तक नहीं आयीं।"

केतकी ने धीमे पर नपे-तुले शब्दों में एक शरारा छोड़ा—"श्री भी तो अभी नहीं आये।"

सारी मंडली यों अधीरता से प्रतीक्षा कर रही थी, और एम० पी० की बातों से ऊब उठी थी। एम० पी० अपने सदा के अप्रासगिक ढग से बोर कर रहे थे कि कैसे केतकी के पति निर्मलराम ने उन्हे मित्र के नाते ज्योतिषाचार्य भोलाशंकर से मिलाने का वचन दिया था; और कैसे उन के ग्रहयोग आगामी वर्ष मे और भी बुलन्दो पर थे, कि श्यामा और श्री भी आ गये। पार्टी का समय छः बजे का तय हुआ था वे आये थे साढे सात बजे।

अन्दर आते ही श्री ने क्षमा मागी—"क्षमा कीजिए, मेरे कारण आपको कष्ट हुआ। जरा देर हो गयी।" और यह कहकर श्री ने श्यामा की ओर यो देखा मानो विलम्ब का कारण वही हो।

श्यामा आज सदा की भाँति प्रसन्न-चित्त और मुस्कराती हुई नहीं थी। उल्टे वह कुछ गम्भीर और उदास, कुछ क्रोध से भरी और कुछ आत्म-परिताप से पीड़ित सी जान पड़ती थी। वह कुछ नहीं बोली। गुमसुम बैठी रही। श्री

की ओर उसने यों देखा मानो उसे डाँट रही हो कि वह कोई भेद की बात सब के सामने न कह दे ।

बात यह हुई थी कि पौने छः बजे जब अपनी गाडी लेकर श्री श्यामा के घर पहुँचा तब उससे मिलने जुलनेवाली कोई सहेली या सम्बन्धिन बैठी थी और श्री को आध घटा बाहर के कमरे मे बैठा रहना पड़ा । एक अविवाहिता, स्वतत्र स्वावलम्बिनी स्त्री के कमरे में इस तरह समय बिताना वैसे न भी अखरता, पर इधर-उधर देखते हुए उसे सहसा एक किताब दिखायी दी । उसे खोलते ही, प्रथम पृष्ठ पर लिखा था बहुत जमे हुए अक्षरों मे.

'जन्मदिन का उपहार । कुमारी श्यामा को सस्नेह...सत्यकाम ।"

श्री के मन मे सहसा कई बाते उठी । उस दिन सबेरे श्यामा झूठ क्यो बोली थी ? सत्यकाम के घर पर रात को मैने उसे देखा था, यह बात भी मैंने उसे बातचीत मे कह दी थी फिर भी वह चुप रही—क्यो ?

तो क्या वे सब स्नेह और आश्वासन से भरे भावुकतापूर्ण पत्र झूठे थे ? और क्या प्रेम सचमुच जैसा कविजनों ने वर्णित किया है निरी प्रवचना हैं, निरी आत्म-प्रतारणा ! श्यामा सत्यकाम को चाहती है ? सच्चे हृदय से ? तो वह जो श्री के प्रति अपनी स्नेह और ममता व्यक्त करती है वह क्या निरा अभिनय है ? नारी जन्मना अभिनयकुशला होती है । श्री ऐसे सहजपराजित होनेवाला व्यक्ति नहीं है । उसने निश्चय किया कि अब श्यामा बाहर आयी—उससे पूछकर वह फैसला कर लेगा ।

पर श्यामा बाहर जल्दी नहीं आयी । और उसकी खीझ बढ़ती ही गयी । उसने मेज पर करीने से लगी किताबों में से भारतीय नृत्यकला पर अग्रेजी मे लिखी कोई पुस्तक उठायी । वही मुद्राएँ थीं; वही उदयशंकर या रामगोपाल थे; कथकली के चेहरे; वही सब-कुछ था । वैसे श्री को अपनी कालेज की पढ़ाई के दिनों से चित्रकला से बड़ा शौक था । और किताबो के चिकने आर्ट पेपर पर नमन और प्रणति की मुद्रा मे छाया-चित्रित किसी नर्तिका के पोज पर से उसका मन उड़कर न जाने किन अज्ञात प्रदेशो में, स्मृति-सम्वेदनाओं से भरे दिवास्वप्नो से सुसज्जित कल्पना-लोक में पर फड़फड़ाने लगा । शून्य मे अपने सुनहले पंखों

की आभा मे छटपटाने वाला प्रभावहीन वह देवदूत ! मैथ्यू आर्नल्ड ने शैले पर यह फतवा दिया था न ! पर उसकी कविता के कारण नहीं, उस कवि के व्यक्तिगत प्रणय-जीवन की अस्थिरता और चंचलता से चिढ़ कर—और इसी तरह हमारे सभी निर्णय होते हैं। हम एक चीज का गुस्सा दूसरी चीज पर उतारते हैं, और जहाँ जो हमें करना चाहिए था हम नहीं कर पाते इसलिए और कहीं कुछ और कर बैठते हैं जो नही करना चाहिए था। पर यह ख्याल हमे बहुत बाद मे आता है। जब यह ख्याल आता है तब वह चीज सुधरने की स्थित पार कर चुकी होती है......

श्री के मन मे विशृंखलित तसवीरें बनती मिटती जा रही थीं उनकी एक झलक कुछ इस प्रकार से दी जा सकती है : बम्बई का समुद्र तट, सुनसान जुहू की बालुका-राशि और दूर से आती हुई एक आभामयी नारी-आकृति जितनी ऊँची समुद्र-तरग की लावण्यमयी, नील, फुफकारती, फेनिल जलराशि : ताड़ और नारियल के पेड़ों की बिखरी हुई कुन्तल-राशि मे से सरसराता हुआ सायवात, श्री की अंगुलिया विपुल, स्निग्ध केश-भार मे से हौले-हौले घूम रही हैं। यह मानों सहकरुणा-भरा थपथपाना नहीं है : यह किशोरों का अधीर, उष्ण श्वासों की निकटना से भरा आश्लेषण का स्पर्शारम्भ नहीं है; यह निरी थकान, समुद्र सन्तरण के बाद की गात्रों की शिथिलता है।...और सुनहरी गहरी लाल काली सन्ध्या की अनुभूति उसे दुबारा हुई पुरी के समुद्र तट पर। नील-जामुनी क्षितिज-विस्तार, चित्रकार की कल्पना को उकसाने वाली दृश्यावली की वर्णाढ्य रंग-संयोजना, यह सब कुछ था पर पुरी में बम्बई की प्रिया, सखी, सहपाठिनी नही थी ! एकाकी होने पर मनुष्य को दुखद स्मृतियाँ ही याद नहीं आतीं, सुख संवेदनाओं की पुलक का भी ध्यान हो आता है, और अब उनके प्रत्यागमन से, उनके दुबारा घटित न होने का अभाव अधिक दुखद हो उठता है...और श्री का प्रतीक्षास्थिर मन उन सब दृश्यों को जगाने लगा जिनसे वह प्रतीक्षा के लम्बे समय के पार जा सकता था। न जाने क्यों उसे समुद्र की बात याद आयी थी। समुद्र की बात को सोचते-सोचते उसे पहाड़ो की याद आयी। नैनीताल से बागेश्वर जाते हुए बैजनाथ के पास शाम को देखा हुए नन्दादेवी का त्रिशूल-शिखर

हिमवन्त की वह पारदर्शी, चमचम, रजताभ किंवा स्वर्णिम झाँईवाली झाँकी ! और उससे भी अधिक सुन्दर था दार्जिलिंग मे देखा हुआ काचनजंघा-शृंग, सुदूर सफेद, हाथियो के झुंड से बादलों पर आरूढ़, राजसी, शृंखलाबद्ध, नेपाल-भूटान तिब्बत की त्रिसीमा का प्रहरी, पति ! चायबागान के सुन्दर, करीने से लगे, सीढ़ियों जैसे वृक्ष । बीच-बीच मे घाटियो में सिर के बल कूदनेवाले झोरा । सदा बदरी । बीच-बीच में आकाश को छूने वाली, ॐ मणि पद्मे हुं करोड बार लिखी लम्बी पाल के आकार की सफेद तिब्बती धारणियाँ या ध्वजाए, चावल की बनी राक्षसी मूर्ति की पूजा, काली ठकुरानी, बुधिनी, हुडुमदेव, "ड्वाग ड्वाग डुंगु-डुंगु डर लाग्दो बाजा । राति राति हिडने गोर्खाली राजा ।" गोरखनाथ की जय ! लिम्बू जाति के गन्धर्व-विवाह...शैव बौद्ध-मिश्रण, 'वीरलिंग' या बलि दिलाने वाला साधु, भूचाल, धसक जाने वाले पहाड़ के फेफडे...क्या मनुष्य के मन की आधार शिलाए भी कभी कभी इसी तरह चट्टानो और मिट्टी के खिसकने और नीचे गिर पड़ने की तरह सहसा अपना सन्तुलन नही खो बैठती ? क्या आदिम विकार आस्था और विश्वास के गले को पकड़ कर, दोनों पजो से दम घोटने का काम नही करते ? क्या श्री के मन का आधार...

अचानक श्री नृत्यकला की पुस्तक देखने लगा । और उसका मन समुद्र और पहाड से लौटकर चित्र की नारी आकृति की नीली आँखो और शिल्पित-प्राय स्तनमडल पर अटक गया । केतकी के घर पार्टी छः बजे थी । और इस समय श्यामा के घर मे बैठा श्री घड़ी मे छः बजकर तीस मिनट देख रहा था । और कुछ कर नहीं सकता था । एक मन उसका हुआ कि वह उठकर चल दे और श्यामा को अपने साथ ले ही न जाय । पर यह फिर एक विश्वासघात होगा । किन्तु क्या एक व्यक्ति का दो व्यक्तियों के बारे में एक सा सोचना इस एक के विश्वास का खण्डन नहीं है ? क्यो नही ? जैसे श्री का दार्जिलिंग मे उस चीनी लड़की से......

श्री खट् से सीधा होकर बैठ गया । सोचने लगा कि उस दिन सत्यकाम के घर की सीढ़ियो पर से वह चुपके से क्यो लौट आया था ? क्यो नहीं वही उस मडली मे वह पहुँच गया और भरी सभा मे जाकर श्यामा से मिलकर लौटा

परन्तु वह अपने आप को सुसस्कृत समझता था न ? क्या सस्कृति हमे कायर भी बना देती है...

कि अपनी सहेली को विदा करके श्यामा आयी। दोनो मे बातचीत कुछ झड़प से शुरू हुई। श्री रोषभरे स्वर मे बोला—"बड़ी देर कर दी श्यामा।"

"मै क्या करूं। दफ्तर की एक परिचिता थी। उसे मना भी कैसे करती ?"

"मना करना सिर्फ पुरुषो को आता है ?"

"जी हाँ, वे सभी सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र होते हैं न। स्त्रियाँ अधिक सच बोलती है। अभी यह लड़की आयी थी, यह भी कह रही थी कि...मैने कहा मुझे केतकी के घर आज शाम को जाना है, तो केतकी के बहुत फारवर्ड होने की वह बुराई कर रही थी।"

श्री से न रहा गया। सहसा बोल उठा—"हाँ, केतकी जो कुछ कहती हैं, करती हैं। उसमे हृदय का खुलापन है। ट्रान्सपैरेंसी है दिल की। कुछ स्त्रियाँ कहीं जाती हैं और पूछने पर झूठ ही कह देती हैं—मै घर जा कर सोती रही।"

इतने मे श्री पुस्तक बन्द करके टेबल पर यथास्थान रखने गया कि एक एक फोटो भी नीचे आकर गिर पडा। सुन्दर सा छोटा एन्लार्जमेन्ट। श्री उसे उठाने झुका, और श्यामा भी। दोनों की टक्कर होते होते बची। श्यामा के हाथ से प्रायः छीनते हुए श्री ने देखा...सत्यकाम का छायाचित्र था। उसपर अलकृत अक्षरों मे लिखा था...प्रेमपूर्वक श्यामा को।

श्यामा अब कुछ नही बोली। एक दम विषय बदल कर उसने कहा—"मै अभी तैयार होकर आती हूँ।" और वह कपड़े बदलने चली गयी।

विषण्ण दमित क्रोध से दुखी श्री जाकर खिड़की के पास खड़ा हो गया! बाहर बाजार बराबर चल रहा था। मुहल्ले में अब बत्तियाँ जलनी शुरू हो गयी थीं। वह सोच रहा था पार्टी में सब हमे कोस रहे होंगे। सत्यकाम भी. अब श्यामा से इस विषय मे पूछना व्यर्थ है। वयस्क अविवाहित है। पता नही कितने सत्यकाम, श्री और कौन-कौन उसके परिचित मित्र युवा संगी रहे होंगे ? पर फिर

उसके मन ने एक पलटा खाया और वह सोचने लगा, इस तरह सहसा किसी निर्णय पर आ पहुँचना बडा सस्ता, पुराना, अतिसामान्य सन्देह प्रधान पुरुष-स्वभाव है। परन्तु श्री ऐसा अतिसामान्य नही है। किसी उपहार-पुस्तक के, छाया चित्र से, या शाम को या रात को देर तक किसी पुरुष के यहाँ रह जाने से क्या उस स्त्री के सम्बन्ध मे कोई निर्णय किया जा सकता ? यह सब सोचना व्यर्थ है। नहीं नही, श्यामा का दिल उसने निरर्थक दुखाया। श्यामा वही श्यामा है : श्री भी वही पहले जैसा श्री है।

श्यामा बहुत सुन्दर धूप छाँही रग की साड़ी पहन कर बाहर आयी। केशों का भी उसने विशेप आकर्षक प्रकार का विन्यास किया था। और दोनों मोटर मे, बिना बोले आ दाखिल हुए।

कुछ दूर तक मौन चलने पर श्यामा ने यह विपय छोड़ा "श्री, तुम अपने आपको क्या समझते हो ?"

"आदमी।"

"आदमी को पाप-पुण्य का डर होता है ?"

"आधुनिक आदमी को डर किसी भी चीज का क्यों होना चाहिए। उसकी अपनी बुद्धि है। और विज्ञान सहायक है, यदि आवश्यकता हो।"

"फिर वही बुद्धि और विज्ञान की बात ले आये। श्री, तुम मनुष्य हृदय को भी क्या खेत समझते हो, कि उस पर भी ट्रैक्टर चला कर सामूहिक खेती हो सके ?"

"मुझे मालूम है श्यामा, तुम मशीन से नफरत करती हो : पर पग-पग पर तुम्हे उसकी जरूरत भी पडती है। श्यामा, तुम चाहती कुछ और हो, कहती ठीक उससे उल्टा ही।"

वाद-विवाद और भी चलता कि तेज चलने के इरादे से श्री ने मोटर की रफ्तार बहुत बढ़ा दी, और मोड़ पर एक्सीडेंट होते-होते बचा। एक बुढ़िया मोटर के नीचे आ गयी होती। पर श्री चतुराई से मोटर उससे बचा कर निकाल ले गया। पर एक और संकट आन उपस्थित हुआ : एक्सीडेंट

के भय के मारे श्यामा एक चीख के साथ आँखें मूँदकर उसकी बायीं बाँह पर अचेत सी गिर गयी।

पहले तो श्री यही नहीं समझा कि श्यामा को हो क्या गया ? पर थोड़ी देर बाद उसने गाड़ी एक घने छायादार पेड़ के नीचे जा कर रोकी और देखा कि श्यामा बेहोश है। यह श्यामा को कभी-कभी आने वाले हिस्टीरिया जैसे फिट का एक दौरा था।

श्री सहसा घबरा गया। उसने श्यामा की कड़ी पड़ी देह को मोटर के अन्दर के हिस्से में कुछ फैला कर लिटाया। पास के नल से पानी लाकर मुँह पर छिडका। पर नाड़ी ठीक चल रही थी। हृदय की गति भी नार्मल थी। बस दाँत भींच कर मुट्ठियाँ बाँधे श्यामा वहाँ शहीद की मुद्रा मे पड़ी थी।......"यहाँ जिन्दगी नहीं, चलती फिरती ममियों की शवपूजा है।"

बाद मे वह डाक्टर के यहाँ गया। कुछ दवा सुँघाने से श्यामा पुनः पूर्ववत् हो गयी। वह भूल गयी थी कि इस बीच मे क्या हुआ ? और इस तरह पार्टी मे वे देर से पहुँचे थे। श्यामा का स्वास्थ्य ठीक नही है और उसे गाने का आग्रह न किया जाय, इस बात पर श्री ने ज़ोर दिया। फिर शायर ने कुछ सुनाया, सुधीर ने बंसी बजायी जो चैन की नही बेचैन की बशी थी। और अन्त मे सत्यकाम से गजल गाने का बहुत आग्रह किया गया। एम० पी० भी भजन सुनना चाहते थे; पर वह फरमाइश पूरी न हो सकी।

बहुत समय बीत चुका था। सब जाने की तैयारी मे थे, तब अन्त में एक साथी ने बड़ी वेदनाभरी आवाज में 'दर्द' की गजल छेड़ी...

तुहमतें चन्द अपने जिम्मे धर चले,
जिस लिए आये थे हम वह कर चले।
ज़िन्दगी है या कोई तूफ़ान है,
हम तो इस जीने के हाथों मर चले।
शमअ की मानिन्द हम उस बज़्म मे,
चश्मतर आये थे दामनतर चले।

साकिया यों लग रहा है चल-चलाव,
जब तक बस चल सके सागर चले।

सत्यकाम उठ कर चल दिया।

हँसी खुशी से मजलिस समाप्त हुई। एम० पी० साहब की नींद के समय का व्यतिक्रम होने से परेशान थे। सुधीर और दूसरे लोग अपनी अपनी साइकिलें और साज की पेटियाँ उठा कर चल दिये। और दो गाड़ियाँ रात के 'शो' मे चित्र देखने चली...केतकी अल्ताफ हुसैन को ड्राइव करके ले जा रही थीं और श्यामा को श्री। पिक्चर खास अच्छी नहीं थी, पर बहुत बार चित्रपट तो केवल कम्पनी के लिए देखे जाते हैं।

••• •••

: ४ :

. ••••••

सिनेमा हाल मे विशेष रिजर्व किये हुए 'बाक्सो' मे चारों जा बैठे, सब से दायीं ओर श्यामा, बाद मे अल्ताफ हुसैन फिर श्री और बायीं ओर अन्त मे केतकी। इन चारो मे केतकी वहाँ विशेष रूप से चमक रही थी, वेश, आभूषण, प्रसाधन सब यथावत् थे। पिक्चर आरम्भ होने से पहले कुछ मजाक होता रहा। अल्ताफ हुसैन साहब ने अपने रूसी भाषा के अधकचरे ज्ञान को छाँटते हुए कहा ."आज की वेचेसिका बड़ी सुन्दर रही।"

"वेचेसिका?" केतकी ने पूछा।

"रूसी जबान मे शाम की पार्टी या दावत को कहते हैं।"

तीर बराबर लगा था। श्यामा ने कुछ स्निग्ध कटाक्ष करते हुए कहा ..."अच्छा आप रूसी भी जानते हैं?"

"कुछ-कुछ। आप आज बहुत अनमनी रही। वर्ना मै आपसे रिक्वेस्ट करने ही वाला था...पोदूते पञ्जालुस्ता।"

"यह और क्या आफत है? यह भालू की जबान जान पड़ती है।"

अल्ताफ ने हँस कर उत्तर दिया, "इसका मतलब है कृपया गाइये।

रूसी में ये शब्द हो चाहे न हो—शब्दो का काम पूरा हो चुका था।

और पिक्चर शुरू हो गयी।

जो पिक्चर उस रात उन चारों ने देखी, उसमें कोई विशेषता नहीं थी। जैसी भारतीय फ़िल्मे गये चार-पाँच सालो मे निकली हैं वैसी ही एक सडियल मामूली, यान्त्रिक कथानकवाली फिल्म। कभी सलवार कुर्ते मे से शरीर के अंग मटका कर कोई कुरूपा शृंगार का अतिरंजित अभिनय कर रही है, कभी पंजाबी ठेके पर टप्पे की तर्ज पर कोई अर्थहीन गाना हो रहा है...शब्दार्थ उसमे गौण है, कामुक स्वरावली का स्पैनिश वाल्ट्ज़ से लिया नृत्य-ताल प्रधान है।

इंटर्वल मे सिनेमा की पटकथा की तन-मन-वचन से रुग्णा नायिका पर विवाद चल पड़ा और श्री ने अनजाने ही श्यामा के मन का कोई खिंचा हुआ तार झनझना दिया : "आजकल लडकियो की बड़ी उम्र तक शादी नहीं होती और अक्सर उनकी तबीयत खराब हो जाया करती है।"

श्यामा ने आँखें बड़ी-बड़ी करके डाँटते हुए .यद्यपि उस धुंधली रोशनी मे वह भाव इतना स्पष्ट नहीं हुआ, विषयान्तर करने के लिए कहा, "पिक्चर कैसी लगी?"

अल्ताफ सिर्फ हस दिया।

अपनी रुचि की आधुनिकता का परिचय देते हुए केतकी बोली, "ऊँह, बोर है।"

श्यामा ने भी कुछ मुँह बनाया और सिर को मजबूत पथेली से पकड़ लिया..."आज कुछ सर्दी ज्यादह है, क्यो?"

अल्ताफ ने अतिरिक्त कोमलता से कहा, बाहर शायद पानी बरसा है। "पिक्चर के बाद हम बार में चलें। आपका यह सरदर्द मिन्टो मे दूर हो जायगा।"

इस विषय पर अल्ताफ अपने विशद अनुभव की गाथा बयान करते, पर रुक गये। श्यामा ने दोनों हथेलियो से अपना मस्तक और जोर से दबा लिया। और वह कुर्सी की एक बाँह पर जैसे झुक गयी। इस बीच मे चित्र मे अपने जगली नाच और सर्कस जैसी उछल कूद के साथ शुरू हो गया था। श्री उठा। उसने श्यामा का हाथ अपने हाथो मे लिया और उसे सहारा देते हुए उठाया।

केतकी अल्ताफ से माफी माग कर दोनो बाहर निकल आये। श्री ने अपनी गाड़ी मे श्यामा को लाकर बैठाया कि श्यामा भयानक शीश-पीड़ा से व्याकुल अन्दर लेट सी गई।

श्री ने जल्दी से कार डाक्टर सेन के यहाँ रोक दी। डाक्टर सेन मजेदार आदमी थे। डाक्टरी से ज्यादह उन्हे कविता से शौक था। नाटे से, काले, मोटे, भलेमानुस। उतरते ही जब श्री ने सब हाल कहा तो अपना स्टेथस्कोप लटकाये वह कार तक पहुँच गये। पेशंट की नाडी देखी और देखी हृदय की गति। थोड़ी देर रुक कर बोले ..."केस कुछ साइकोलाजिकल ज्यादह है।" जब हिस्टीरिया के दौरे की बात श्री ने कही, डाक्टर ने पूछा..."फिर वे होश मे कैसे आयी?"

श्री ने कहा "मेरे पास एक रूमाल मे एसेंस था।"

डाक्टर सेन ने गम्भीर मुद्रा से कहा..."हाँ, स्मृतिभ्रंश के रोगी मे प्रिय फूलों की सुगन्धि पुनः स्मृति ला देती है। सीरियस नहीं है। यह कुछ टेब्लट्स दे दीजिए।"

श्यामा के घर श्री पहुँचा जीने से सहारे-सहारे श्यामा को चढ़ाया। उसकी पर्स मे से चाभी निकाल कर दरवाजा खोला। पर्स मे एक नोटबुक भी उसे दिखायी दी, जिसे पढ़ने की उत्सुकता उसके मन मे जाग उठी। उसे लगा कि कुमारी की प्राइवेट डायरी वह क्योंकर पढ़े। और जब वह इस तरह रुग्णावस्था मे हो, तब उसकी अनुमति के बिना? क्या यह पाप नही है? पर जिसे अपना स्नेही मान लिया उससे दुराव-छिपाव क्या?

ऊपर पहुँचकर श्यामा को उसने उसके पलग पर सुला दिया। हलका-सा कम्बल ओढ़ा कर, दवा की टिकिया उसे दे दी। और थोड़ी देर वह बैठा रहा, दवा का असर देखने।

सब ओर सुनसान था। घड़ी टिकटिका रही थी। पर्स मे से वह नोटबुक निकाल कर श्री पढ़ने लगा।

ला रोशेफूको की कहावतें अंग्रेजी मे अनूदित पढ़ी। सत्रहवीं सदी के इस फ्रासीसी चिन्तक का यह वाक्य कितना अर्थपूर्ण है..."हाउ मच हैज ए

वूमन टू कम्प्लेन आफ व्हेन शी हैज बोथ लव एन्ड वर्च्यू।...देअर आर मेनी आनेस्ट वीमेन हू आर टायर्ड आफ देयर प्रोफेशन।"

उसी के पास कहीं हाशिये मे और कई वाक्य स्त्रियों के विषय में लिखे थे : एक फारसी कवि ने कहा है, "दुनिया के प्रारम्भ मे अल्लाह ने एक गुलाब, एक लिली का फूल, एक कबूतर, एक सॉप, थोड़ा सा शहद, एक सेब और मुट्ठी भर मिट्टी ली और उसकी ओर दृष्टिपात किया। देखा तो वह एक स्त्री थी।"

"मेरा कयास है कि मनुष्य जो चीजें सुधार सकता है उनमे स्त्री अन्तिम वस्तु है।" : मेरेडिथ :

"स्त्रियों की हाँ और नहीं मे एक आलपिन भी घुस नहीं सकती।" : सर्वेतिस :

"स्त्रियाँ जब अकेले में होती हैं, तब कैसे समय बिताती हैं यह यदि पुरुष जान ले तो वह कभी शादी ही न करे।" : ओ हेनरी :

"ईश्वर ने स्त्री बनायी। और उसी क्षण से जीवन की नीरसता नष्ट हुई। परन्तु उसके साथ ही साथ कई चीजें नष्ट हो गयी। स्त्री ईश्वर की दूसरी गलती है।" : नीत्शे :

"परन्तु स्त्रियों से नफरत करने वाले इन सब पुरुषों के मन मे स्त्री के प्रति गहरा नकारात्मक आकर्षण होता है।"—श्यामा।

नोटबुक का यह एक ही पन्ना उसने पढ़ा। और आगे वह न पढ़ सका। उसके मन मे द्वन्द्व चल रहा था कि बीमार, सोती हुई श्यामा को यो अकेला छोड़कर वह घर चला जाय ? क्या यह उचित है ?

और उसके घर पर सोते रहना तो और भी अनुचित है न ? तिसपर उसे सबेरे-सबेरे उठ कर जितने जल्दी हो सके देहात मे अपनी ड्यूटी पर पहुँच जाना है, एक ट्रैक्टर की सहकारी खेती के प्रयोग का प्रथम उद्घाटन है। ट्रैक्टर! और श्यामा का स्वास्थ्य उसके आगे कुछ नही है। नौकरशाही के विराट् यन्त्र का छोटा सा कीला श्री अप्रतिभ होकर सोचते बैठा है.....

नीले झिलमिले पर्दे से श्यामा सोयी हुई दिखायी दे रही है। कमरे की मन्द रोशनी मे उसका चेहरा अतिरिक्त फीका और पीला जान पड़ता है।

दार्जिलिंग मे चॉदनी रात में उस चीनी लड़की ने जब अपनी दर्दभरी गाथा टूटी-फूटी अंग्रेजी मे सुनायी, तब क्या उसका चेहरा ठीक ऐसा ही नहीं था? शी-चुन उस लड़की का नाम था। वह गायिका थी।

श्री आखिर भारी कदमो से उठा। गाड़ी स्टार्ट की और अपने घर आ गया। परन्तु उसे नींद बड़ी देर तक नहीं आयी।

उधर पिक्चर पूरा करके केतकी और अल्ताफ़ लौटे। अल्ताफ़ साहब पूरे अपने कवित्व के जोम मे थे। बीच-बीच मे कारण-अकारण, कविताएँ जो अधूरी टुकड़ो में उन्हे याद थीं वे सुनाते जाते थे। प्रेम की चर्चा छिड़ी थी और अल्ताफ़ कह रहे थे, गुनगुना कर :

बे-खुदी ले गयी कहाँ हमको,
देर से इन्तज़ार है अपना।
रोते फिरते है सारी सारी रात,
अब यही रोज़गार है अपना।
दे के दिल जो हो गये मज़बूर,
इसमें क्या इख्तियार है अपना।

केतकी ने उन्हे चिढ़ाने का निश्चय कर लिया था। बोली..."शायर साहब, सारी-सारी रात रोते रहने वाले शायर आपको पसन्द हैं। ये आपकी आँखें हैं या आँसुओ के फव्वारे हैं।"

अल्ताफ़ ने कुछ कहने की कोशिश की कि शायरी हृदय की और भावुकता की चीज है। उसका इस तरह निर्ममभाव से वैज्ञानिक विश्लेषण, फूल के पराग को उससे छीनकर उसपर तेजाब के प्रयोग की भाँति है।

तब सहसा केतकी ने विषय बदल कर कहा :—"श्यामा और श्री तो आधे चित्र में से ही जैसे गायब हो गये।"

"श्यामा बीमार थी न?"

"श्यामा शायद वह अमराईवाला दृश्य देखकर ही ज्यादह बीमार हो गयी, क्यों?"

अल्ताफ साहब कुछ हँसी में टालते रहे। वह अपना निर्णय देना नहीं चाहते थे।

इतने मे कार कुछ खुले मे बाहर आ गयी। लम्बे-लम्बे लान, दूर पर शायद इडिया गेट की परछाई सी। सब कुछ धुँधला और कुहरिल। हवा में एक तरह की खुनकी भरी थी, जो कि वर्षा हो जाने के बाद धरती और शून्य के बीच में जैसे भूल गई थी। बड़ी सुखद रात थी। और अल्ताफ हुसैन को लगा, जैसे शायरी के लायक कोई वक्त है तो यही है। केतकी से उसने कहा,...''जरा रुक जाओ।'' और केतकी ने गाड़ी रोक दी।

दोनो उतरे और धीमे-धीमे जलाशय के निकट जाकर बैठे। एक कुमुद का फूल शरारत से जैसे हँस रहा था। प्रेम के नाम पर निरे रूपाकर्षण से पास खिंची इस जोड़ी के मन का हाल जैसे वह फूल जानता हो और कहता हो।

सब मुश्किल है, आरजू बेकार,
क्या करें आशिकी में क्या न करें ?

न जाने अल्ताफ को क्या लगा। उसने केतकी के कन्धे पर हाथ रख दिया। उसने भी मना नहीं किया।

(केतकी के जीवन का यह स्पर्श-पक्ष बहुत अभावपूर्ण है। उसके पति व्यवसाय में सदा बँधे रहते हैं। सदा दौरे पर। कभी हवाई जहाज से, कभी रेल से, कभी मोटर से वे बधे रहते हैं जैसे उनके पैरों में चक्कर पड़ा हो। और केतकी ने कई सन्ध्याएँ सुन्दर कपडे पहिन कर प्रतीक्षा में यों ही सूने मे बिता दी थीं। उसके मन का मेल इस निरे व्यापारकुशल निर्मलराम से नहीं हो पाता था। और फिर उसके मन मे एक प्रसुप्त सकोच और भय के साथ ही साथ परपुरुष के प्रति जगनेवाली एक अज्ञात कुतूहल-भरी आकांक्षा, एक जिज्ञासायुक्त साहसिकता भी थी।

अल्ताफ जैसे रूप की मदिरा पिये और उन्मत्त हो गये। जलाशय में पड़ा चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब बिखर गया। पानी के सोते में जैसे मिट्टी नीचे से किसी ने ऊपर तक हिला दी। वह गुनगुनाता जाता था :

दिया अपनी खुदी को जो हम ने उठा
जो परदा सा बीच में था न रहा,
रहा परदे में अब वह परदानशीं
कोई दूसरा उसके सिवा न रहा।

प्रकृति का सरंजाम अनुकूल था। पाप या पुण्य के कोई मानसिक ताले या संयम के बाँध वहाँ नहीं थे। मुक्त मन से नारी और पुरुष मिल रहे थे। स्नेह की प्रगाढ़ छाया मे, परस्पराकर्षण की आदिम वन-ज्योत्स्ना की सुरभि से आलोकस्नात।

आसमान में बादल यों छितरे थे, और चाँद उनके टुकड़ों में यों छिपा था जैसे

अयां ऐसे कि हर शै में निहाँ थे।
निहां ऐसे कि हर शै से अयाँ थे॥

किन्तु यह प्रणय-लीला अधिक समय तक नहीं चली। सहसा दोनों को समय का भान हुआ। दूर पर कहीं एक घड़ियाल का घंटा शून्य दिशाओं में अपनी ध्वनि प्रतिगुंजित करता खो गया। जलाशय के पानी मे फेंके कंकड़ हट गये। धीरे-धीरे गोल-गोल आवर्त के बने निशान संकुचित होकर एक बिन्दु की ओर सिमटने लगे। और चाँद साफ दिखायी दिया।

तब केतकी ने पुनः कार स्टार्ट की। और अल्ताफ साहब किसी हलके से नशे में चूर आदमी की तरह उनके साथ हो लिये। अपने मोड़ पर आकर गाड़ी के रुकने पर बोले..."अच्छा आपसे फिर मुलाकात होगी न ?

"ज़रूर, क्यों नहीं।" कह कर केतकी हँस दी, अकारण।

और गाड़ी को जल्दी से मोड़ कर वह घर पर ले आयी।

घर पर आकर उसने जमना को जगाया तो पता चला, ये सब लोग पार्टी के बाद सिनेमा गये, तभी बाद में उधर से सहसा केतकी के पति काश्मीर से लौट आये हैं। वे थके हुए थे और पास के कमरे में सो रहे हैं।

केतकी अन्दर जाकर पुनः चोर की तरह, सोने का बहाना करने लगी।

रात का समय नहीं कटता, नींद जल्दी नहीं आती, इसके लिए उधर

एम० पी० साहब ने नीद की गोलियाँ नहीं खायी : परन्तु 'कल्याण' मासिक का एक पुराना मोटा विशेषांक 'नारी-अंक' उठा कर इधर उधर टटोलने लगा।

जहाँ जहाँ उनकी नजर अटकी वे अंश यों थे :

"स्त्री की सृष्टि जगत् को मुग्ध करने के लिए नहीं, अपने पति-देवता को सुख देने के लिये हुई है।" : एडमड बर्क :

"हिन्दुओं में स्त्रियो को जितना सम्मान दिया जाता है, उतना संसार की और किसी प्राचीन जाति में नहीं दिया जाता।" : विल्सन :

"स्त्रियों के बाहर के कार्यों मे लगे रहने से काम नही चलेगा। हमारे देश की प्रत्येक महिला को गृहिणी और जननी बनना पड़ेगा।" : हेर हिटलर :

"स्त्रियों को किसी भी वय मे स्वाधीन छोड़ना उचित नहीं।" : हरेसमैन :

"पुरुषों के अधीन रहने मे ही स्त्रियों की सबसे बड़ी शोभा है।"

: ल्यूइस मारिस :

द्वारोपवेशनं नित्यं गवाक्षेण निरीक्षणम्

असत्प्रलापो हास्यं च दूषणं कुलयोषिताम् ॥ : व्यास संहिता :

न पितानात्मजोनात्मा न माता न सखीजन।

इह प्रेत्यच नारीणां पतिरेको गति : सदा ॥ : रामायण :

नाश्नीयाद् भार्यया सङ्गे : मनुस्मृति :

युवतीं गुरुभार्यश्च प्रणमेत्र पदेस्पृशन्। : बृहद्धर्म :

स्त्री शूद्रोनाधीयताम्। : स्मृति :

धन्य है भारतीय संस्कृति और उस हिन्दू संस्कृति के रक्षक हम और आप! विलायत वगैरह यानी रूस-अमरीका में तो स्त्री पूज्य है ही नहीं। मिलिटरी ट्रेनिंग भी ले रही हैं, और क्या-क्या नहीं कर रही हैं, छिः छिः! मर्यादा तो भारतीय नारी में ही शेष है। यों सोचते-सोचते एम० पी० सोने का यत्न करने लगे।

पर नींद किसी तरह से आ नहीं रही थी। उनके मनश्चक्षुओं के आगे बार-बार वही शाम की पार्टी के रंग-बिरंगे वेश-भूषा-सज्जा वाले चेहरे और नारी-देहलताएँ नाच जातीं। अन्त में उन्होंने कुछ धार्मिक मंत्रों का मशीन की तरह

उच्चारण आरम्भ किया, और पापमय विचारों को भगाने का यत्न किया। पर वे विचार उनका पीछा नहीं छोड़ रहेथे। पच्चीस बरस के विधुर जीवन का वह अभिशाप था।

एक रात है और चार पुरुषो के चार तरह के मन हैं। ऐसे चार नहीं चार करोड़ भी हो सकते हैं। और चार करोड़ ही क्यों अनगिनती तारों की तरह ये आदमी हैं। और रात एक है, भारी, नीली, जामुनी, स्याह, तारों-भरी, कभी-कभी रुपहली, भूरी, ऊदी, बादल-भरी, झींगुर की झनकार से, सन्नाटे की भाँय-भाँय से, सपनों के गुंजारव से और स्यारों की भयावनी चीत्कारों से भरी रात। बन्द, कुन्द, सीलनभरो, बदबूदार, कोठरी सी रात। और फिर भी उसमें छाया-पथ है, कहकशा है, आकाश-गगा है, जिसके पार भी अनगिनती तारो के चूर्ण की सिकता पर रजतौघवती एक और दुनिया, जिसका अर्द्धवृत्त मात्र हमारी दृष्टि का क्षितिज है।

और प्रेमी श्री, चित्रकार श्री, अन्न-विभाग में काम करनेवाला सरकारी नौकर श्री सोच रहा था कि नारी के विषय मे और चाहे कोई उपमा सही हो या न हो, यह निश्चित है कि वह नदी की भाँति है। यह स्रोतस्विनी है, जल-प्रपात की यूनानी देवी इगेरिया, वेगिनी, तटिनी, पयस्विनी, वाहिनी, सरि, इन सब नामो से पुकारी जाने वाली सज्ञा नदी...नारी भी वही है।,

घर जाकर उसे बड़ी देर तक नींद नहीं आयी। और वह फिर अपनी प्रिय रचना ऋग्वेद मे संवाद-सूक्त पढ़ने लगा। विश्वामित्र-नदी-सूक्त। विश्वामित्र के अस्तबल से निकली हुई दो अश्वनियों या वत्स को चाटने के लिए पर्युत्सुक दो सफेद गौओं की भाँति विपाट् और शुतुद्री नदियाँ भाग रही हैं! उन्हें क्षण भर रुकने के लिए ऋषि विश्वामित्र कहते हैं। वे उत्तर देती है : हम इस जल से धरती को सन्तुष्ट करती हुई दैव-नियोजित स्थान पर जा रही हैं। हम रुक नही सकतीं। नदियों को रोकना आसान नहीं था। वज्रबाहु इन्द्र ने उन्हें खोदा था, उनके पथ मे बाधा बने वृत्र को उन्होंने मारा था, सुहात सवितृदेव ने उन्हें मार्ग दिखाया था और प्रवाहित किया था। उसी की प्रेरणा से वे बह रही थीं।

अन्त मे नदियाँ उस रोकनेवाले को कवि जानकर कहती हैं...हे कवि, अपना भाषण भूल मत जाना। तू हमे स्तोत्रों मे गाना। पुरुषों मे हमारा धिक्कार न करना। युगों-युगों तक हमारा नाम गूँजे। तुझे नमस्कार हो, कवि।" तब अन्त में कवि ने नदियों की स्तुति की...

"हे नदियों, सुनो,

हे नदियो, सुधनसम्पन्न बनकर, सब को अन्नसम्पन्न बनाकर समृद्ध करो, नहरे और तेज बहाने लगो।"

नदी, नारी और कवि तीनों केवल देने के लिए निर्मित हुए हैं। उन्हें याचक मत बनाओ, सस्कृति के ठेकेदारो! वे दाता हैं। श्री सोचता रहा......

: ५ :

इधर श्यामा हिस्टीरिया-पीड़ित रहकर एक दिन आत्महत्या करके भी मर गई। आभा के मनसे यह दुख हटाये नहीं हटता।

आभा की एक सहेली है मीनाक्षी। उस दिन उसे क्या शरारत सूझी वह 'स्त्री' मासिक का एक पुराना विशेषाक उठा लाई। श्रद्धानद-अनाथ महिलाश्रम, पूना से सबंधित वह विशेषांक था और उसमें परित्यक्ताओं की भयानक रोंगटे खड़े करनेवाली सच्ची कहानियाँ थीं। कुछ कहानियाँ इस तरह से थीं :

१. मदरासी लड़की की कहानी :

माँ बाप बचपन मे मर गये। आगे बुआ ने उसे पाला पोसा। दस बरस की थी तब पड़ोस का एक क्रिश्चियन आदमी उसकी बुआ को पता न चलने देते हुए उसे फुसलाकर बम्बई लाया। वहाँ उसकी बड़ी बुरी गत की। उससे खूब काम करा लेता था और पेटभर भोजन तक नहीं देता था। एक ममतामयी यहूदिन ने यह देखा और उसे वहाँ से हटाकर दूसरे एक ईसाई परिवार में रखा। वहाँ वह गर्भवती हुई। उसके मालिक ने उसे मुक्ति-फौज (रोमन कैथोलिकों की साल्वेशन आर्मी) में भेजने का प्रबन्ध किया। एक सज्जन को इस बात की खबर लगते ही उन्होंने उसे इस आश्रम में भेजा। एक बरस वहाँ रही, साठ रुपये माहवार कमानेवाले एक युवक से उसका विवाह करा दिया।

२ बालविधवा का पुनर्विवाह :

उत्तरप्रदेश की एक बालविधवा को पान खाने का शौक था। उसका जन्म-वंश बहुत ऊँचा, कुलीन था इसलिए विधवा का पान खाना उसके रिश्तेदारो को पसद नही था। उसकी आदत तो छूटनी असभव थी, इसलिए घर के लोग भी उसे अधिक बुरा-भला कहते। अत मे वह आत्महत्या के इरादे से घर छोड़ कर बम्बई मे आई जहाँ वह गुंडो के हाथों मे पड गई। आर्यसमाज की मारफत वह इस आश्रम मे आई और बाद मे उसका पुनर्विवाह हुआ।

३. मै देवदासी नही बनूँगी :

सावंतवाडी की ओर की देवदासी जाति की लडकी। देवदासी जाति मे लडकियो के विवाह नही किये जाते। किसी देवालय में देवता की सेवा करना और विवाहिता की भाँति किसी पैसेवाले यजमान के यहाँ रहना, यह बात कुप्रसिद्ध है। इस लड़की की माँ उसके बचपन मे ही मर गई। वह पूर्ण-यौवना हुई। उसके मामा उसके लिए पति खोजने लगे। परंतु लड़की को देवदासी का जीवन बिताना पसंद नहीं था। कोई उससे विवाह नहीं करता था और उसके पढ़ने की भी कोई व्यवस्था नहीं हो रही थी। आखिर उसके बड़े भाई ने उसे इस आश्रम मे लाकर रखा। वह लिखना-पढ़ना, सीना पिरोना सीखी। लड़की की रहन-सहन किसी भी कुलीन घराने की भद्रकन्या की तरह से है।

४. गुरु-कृपा का फल :

पूना जिले के गरीब ब्राह्मण की लड़की। आप पुरोहिती करता था। बारहवें बरस मे उसका विवाह हुआ। दो तीन बरस मे पति मर गया। उसके पीछे माँ बाप भी मर गये। मौसी का आधार था। मौसी अकेली थी। परमार्थ साधन के लिए किसी गुरु की भक्ति में डूब गई। उसकी कुसगति मे यह लड़की भी गुरु की भक्तिन बनी। उम्र से युवती और रूप से सुन्दरी लड़की के प्रति गुरु के मन मे पाप आया। परिणाम जो होना था वही हुआ। बेचारी श्रद्धानद आश्रम में आकर प्रसूत हुई। गुरु जी ने परमार्थ का मार्ग न दिखाते हुए उस बेचारी को पाप की गर्त मे धकेला।

५. भांडा फूटा :

१६३४ मे इंदौर की एक गडरिया जाति की लड़की इस आश्रम में आई। उसे अड़ोस-पड़ोस के गुंडो ने, जब वह नदी पार जा रही थी, तब, भगाया। पूना मे एक कमरे में बंद करके रखा और बम्बई के एक मारवाड़ी को पंद्रह सौ रुपयो मे बेचा। मारवाड़ी रोज उसे मारता-पीटता। वहाँ पड़ोस मे कोई नाई पाहुना आया। उसने इदौर की कौन लडकी है यह सहज पूछा तब यह भाँडा फूटा। मारवाड़ी को पुलिस ने पकड़ लिया और लड़की को आश्रम मे ले आये। आगे वह शाला में जा रही थी तब एक दूधवाले भैया ने उसे भगाया। उसे भी पकड़ा गया और सजा दी गयी। अभी उस लड़की का एक अच्छे भलेमानस के साथ विवाह आश्रम ने कर दिया।

६. फिसला हुआ पैर :

तीस बरस की सुन्दर युवती। विवाह के बाद उसके माँ-बाप मर गये। दो तीन बच्चे हुए। पति भी गुजर गया। बच्चों मे सिर्फ एक लड़का बचा। थोड़ी सी खेती और पैतृक घर था। कुछ कामधंदा करके पेट पालती थी। आगे किसी भी संगत से उसका पैर फिसल गया। गाँव में शोर मचा उसे फँसाने वाले आदमी उसे जच्चे के इंतजाम के लिए बम्बई ले आये। वहाँ, एक अस्पताल मे उसे रखा और वह भाग गया। वहाँ से वह अनाथिनी आश्रम में पहुँचाई गई।

... ...

मीना पढ़कर सुना रही थी। पर आभा का ध्यान उधर से हट गया था। वह खिड़की के बाहर सूने में घिरते आ रहे साँझ के अंधेरे की ओर देख रही थी। बहुत सा साहस बटोर कर वह बोली..."बस कर मीना। ये सब कहानियाँ रोज हमारे आसपास घटित हो रही हैं और हम उसके लिए क्या कर रहे हैं?"

मीना ने मासिक पत्रिका का अंक बंद कर दिया। और वह भी बहस करने के मूड में जैसे आ गई थी। बोली..."इसमें हमारा क्या दोष है? दोष तो हमारी समाज-व्यवस्था का है, जिसने पुरुष को सब तरह की छूट दे रखी है।"

आभा बोली..."समाज-व्यवस्था क्या चीज होती है? तुम-हम सब मिल-कर ही तो समाज बनता है। यह कहो न कि हममें इतनी सत्-संकल्प की दृढ़ता नहीं है। हम बराबर सही सोचते और ठीक उसमे विपरीत गलत कार्य करते जाते हैं।"

"अब ये प्रेमा का उदाहरण देखो न? उसमे संकल्प होता भी तो वह क्या कर लेती।"

"उसने प्रेम क्यों किया?"

"प्रश्न यह नहीं है कि उसने प्रेम क्यो किया बल्कि प्रश्न यह है कि इस प्रेम करने के बाद भी पुरुष जब उसे नहीं निभाता तो वह लड़की क्या करे?"

"वह उस पुरुष को क्यो नहीं मार डालती?"

"यह भी समस्या का कोई समाधान नहीं है।"

मीना गुस्से मे थी। बोली..."पुरुष निसर्गतः बहुपत्नीवादी होता ही है। उसके शब्दकोश मे एकनिष्ठा नाम का शब्द नहीं है।"

"क्या यह सभी के लिए कहा जा सकता है?"

मीना थोड़ी देर चुप रही। आभा भी। बाद मे आभा ने कहा—"इस विषय पर वादविवाद करके कोई लाभ नही होगा। क्या हम प्रकृति की शक्तियों के साथ लड़ सकते हैं? यदि नही, तो उसके बारे मे चिन्ता करना व्यर्थ है।" वह सोच रही थी...प्रकृति हमारे अच्छे-बुरे की सोच से परे होती है। वहाँ नहीं है कुछ अश्लील या दुराचरण या शीलभग। प्रकृति अपनी राह जानती है। आदमी ने उसे मरोड़कर अपने लीक मे डालने का यत्न किया।"

मीना ने कहा—"होगा। अभी मै चलती हूँ। पर तुम्हे एक दक्षिण भारत की लोककथा इस बारे मे भेजूंगी।

शाम को एक पुर्जा जो उसके पास आया उसमें एक तामिल लोककथा थी। वह इस प्रकार से थी :

"शिव" यानी अच्छाई।
अच्छाई एकबार
जम करके, जड़ीभूत होकर

एक खभा बनी।
आये तब 'धीमान् ब्रह्मदेव,
आये तब श्रीमान् विष्णुगुप्त,
देखने लगे खभा,
जिसका न सिर पैर
ओरछोर कुछ भी नहीं।
दोनो ने की सलाह
हम पकड़ें दो राह :
ब्रह्मा, तुम हस बनो,
विष्णु, बनो तुम बराह या सूअर।
खंभा बड़ा ऊँचा था
[एफिल टावर या कुतुबमीनार कुछ भी नहीं,
न्यूयार्क के सारे नभचुंबी वास्तु से भी]
और बड़ा गहरा था
[सोने की खान से भी, पनडुब्बी-गोते से]
बहुत यत्न किया
पर पाया नहीं अता-पता।
श्रीमानजी थके : 'कमला थिर न रहीम कहि...'
धीमानजी थके : 'न मेधया, न बहुधा श्रुतेन...'
आखिर उस पत्थर सी 'अच्छाई' के आगे
सिर नवॉ
ग्रीवा झुका
बोले : हम बहुत ऊँचे उड़ने से
या कि बहुत गहरे पैठ जाने से
[राकेट से, राडर से] बाज आये,
नहीं तुझे पा सके।
तब वह 'शिव' ता हुई

प्रकट उस खंभे से
बोली यह मै ही हूँ ।
पत्थर जिसे समझे तुम ।
[आकार नये-नये इसके बनाओ, प्रिय ।
पत्थर-सी जड़ीभूत यह जनता ।]
तब से यह तमिल कवि शैव अप्परस्वामी
हाथ मे लिए छेनी-सी खुरपी
प्रतीक्षा मे खड़े हैं, मूर्तिमन्त ।
रचना न श्रीमान, धीमान की खेला,
रचना करती उन हसो की अवहेला
[बोर्जुआ, हाथी-दाँत मीनारवालो की कल्पनाएँ सूक्ष्मकेश]
रचना ने सूअरों को भी द्वार से ठेला
[विलासी, पकरत, सेक्स-चटपटे-लेखको का अभिनिवेश]
रचना तो उसकी हुई
जो कि जड़ता से आजीवन जूझा, विनम्र, निर्निमेप, अकेला ।
रचना ही लिंग-देह, रचना ही कामारि ।"

मीना चली गई । उसने कहानी भी भेज दी । पर आभा का मन उससे भरा नही । उससे श्यामा की बात भुलाये नहीं भुलती । उसने सोचा कि कभी इस पर कहानी ही लिखूँगी । शायद उससे मन कुछ हलका हो ।

: ६ :

श्री की डायरी से

......अमिता को मैं समझ नही पाया । उसे मैं रानी कहता हूँ । पर वह किस प्रदेश की सम्राज्ञी है । कितना चाहता हूँ कि भूल जाऊँ कि वह भी मेरे जीवन की एक भूल है पर यह मन नहीं मानता । निर्मल मेरी बात को समझ नहीं पाता और मुझे अप्रमाणिकता का दोषी ठहराता है । उसके मजाक उड़ाने पर मेरे जी को दुःख होता है उसको वह जान नहीं पाता । जान सकता तो उसे मालूम

होता कि मै इतना हलका नहीं हूँ जैसा वह सोचता है। वह मानो इस बात को भुला देना चाहता है कि मेरे भावो मे भी गहराई है। निर्मल की बात अलग रहे, अपने मन का मै क्या करूँ। वह क्यो नहीं सन्तोष पाता ? क्यो ऐसा लगता है कि बिना अमिता को अपने निकट पाये, इतनी निकट की साँसें एक हो जाय, मेरा जीना सार्थक नही है ? क्या यह ठीक है कि मेरे विचारो मे रात-दिन एक ही व्यक्ति डूबता उतराता रहता है ? क्या इस आकर्षण मे मै फिसला नही जा रहा हूँ ? शक्ति रहते भी जो मै इस भँवर मे से निकलना नहीं चाह पा रहा हूँ यह क्या केवल भुलावा ही नहीं है ? मन मे कुछ बज उठता है कि मै जरूर किसी गलती की ओर बढ़ रहा हूँ।

पर बजा करे। मुझे खूब मालूम है कि कागज के इन काले अक्षरो में मै कितना ही सयत और विचारशील हो लूँ, अमिता को एक ही झाँकी से यह सब धुँआँ बनकर रह जायगा। मेरे लिये यह कोई नई बात नही है। और कोई न जाने पर मै तो जानता हूँ कि पिछले कई वर्षों मे मैने कम से कम पच्चीस बार इस आकर्षण को न कुछ समझकर अपने आप को दृढ़ और निश्चल बनाने की चेष्टा की है। पर क्या मै सफल हो पाया हूँ ? क्या मै सदा ही अपने मन को बहकाता नही रहा हूँ ? अरे, मै इसे क्यो भूल जाता हूँ कि मेरे मन मे ये भाव खिलवाड़ की तरह से नहीं आये ? जिसे आज निर्मल (और शायद अमिता भी) तुच्छ और ध्यान न देने योग्य समझता है, वह मेरी भावना मेरे अन्तस् की तह में से पनप और मेरे रक्त के कण-कण मे प्रज्वलित और प्रस्फुटित होती रही है, क्या मै इसे भुला सकता हूँ ? समझ मे नहीं आता कि मेरा मन क्यो इस प्रकार निर्मित है और मैं क्यों नहीं इस आकर्षण से (जो अगर रूप का नही है तो मुझे नहीं मालूम कि वह मन की भूख क्या है जो इसकी जड़ मे है ?) उबर पाता। पर कहे जाओ। इसका उत्तर कौन दे ?

उत्तर दे सकती है अमिता। पर, वह क्यो देने लगी ? सचमुच वह मेरे लिये पहेली है। मुझे अपने जीवन का ऐसा एक भी दिन याद नहीं जब मेरे मन की दुनिया में वह नहीं थी। बचपन मे न जाने कितने दिन हमने साथ-साथ बिताये हैं। आज वह बड़ी हो गई है, उसकी आँखो में न जाने कैसी आर्द्रता घुल गई

है। और कोट्स और लारेंस की बातें बघारती है। पर क्या यह सब ऊपरी ही नहीं है? यदि आज की अमिता कल की अमिता का ही विकसित रूप है तो फिर यह समझ मे नहीं आता कि कैसे वह मुझसे यो दूर होती चली गई है। बचपन की उन बातो को याद करने से कोई लाभ नहीं है यह मै मानता हूॅ। पर मेरा मन आपसे आप उन तक खिच आता है। खाली समय मे अक्सर आँखें बन्द कर मै उन चित्रो मे रंग भरता रहता हूॅ जो आज समय के धुन्ध से मैले पड़ गये हैं। क्या अमिता की वह लाल ड्रेस जिसे पहन कर वह तितली बनी थी, क्या उसे दिन की शाम जब कायस्थ पाठशाला की फील्ड पर हम लोग दौड़ खेल रहे थे, और मेरी जेब से मेरे सन्दूक की चाभी गिर गई थी। जब अमिता ने घटो उसे साथ-साथ ढुढ़वाया था, यहाँ तक कि लौटते-लौटते रात हो गई थी, और घर जाकर उस पर डॉट भी पड़ी थी।...और न जाने ऐसी ही कितनी बातें क्या वे भुलाई जा सकती हैं। अरे, उस दिन का चित्र तो मेरे हृदय मे अब भी उतनी ही चमक लिये हुए है जब कई साल पहले अमिता अपनी मामी के यहॉ कलकत्ते मे रहकर पढ़ने के लिए गई थी, उस दिन जब हम सबको उसने दावत दी थी, और मुझसे कहा था कि...श्री, तू भी मेरे साथ चल। उसकी वह उदास मुद्रा कुछ बेबसी झलकाती, और उसके चमकीले बालो मे लगे हुए वे फूल मुझे अभी तक दिखाई दे जाते हैं।

पर तब अमिता मे कोई दुराव न था। कलकत्ते से दो साल बाद लौटी तो कुछ और ही हो गई। मुझे ठीक ठीक ध्यान है शुरू में तो मुझसे अच्छी तरह बोली भी नहीं। गई थी तो न जाने क्या-क्या लाने को कहकर गई थी, (वहॉ से जो बड़े-बड़े हरफो में चिट्ठी लिखी थी। उसका मजाक माँ अब तक उड़ाया करती हैं) वह सब भूल गई। दिन रात किताबों से चिपटे रहना, साथी-संगियो को झिड़क देना, घर से बाहर न निकलना कुछ अजीब ही उसका ढग देखने मे आया। उन दिनों वह क्या अजीब-अजीब कहानियाँ सुनाया करती थी, भगवान् जाने कहाँ से सीख कर आई थी।

पर वे दिन बीत गये। उनकी याद मेरे जी में बाकी हो तो हो, अमिता के जी में नहीं। वह तो जैसे कुछ और ही बदल गई है। नहीं मालूम यह कैसे

हुआ। पर कालेज में आते ही उसकी चंचलता, उसका मसखरापन, उसकी हँसते-हँसते लोटपोट हो जाने की आदत सब काफूर हो गई। मानों वह कुछ अतिरिक्त प्रौढ़ा हो गई हो। सम्भव है, कलकत्ते के तरुणों के 'स्टडी सर्किलो' मे जाकर वह गम्भीर बन उठी हो। हो सकता है, यौवन के बाग में कुदरती चोरी-छिपौवल करनेवाली किसी भावना ने गुंजारव शुरू कर दिया हो। हो सकता है, अमिता मुझे जानबूझ कर भुलाने की कोशिश कर रही हो। पर कुछ है जरूर, जो उसे पुरानी अमिता नही बने रहने दे रहा है।

मै उस कारण का पता लगाकर रहूँगा।

अमिता की डायरी से

यह श्री अभी बालक है या दूसरे शब्दों मे कवि ही बना रहा है। सन्क्षेप में, मूर्ख है। दो साल हो गये, कलकत्ते जाने से पहले यह मुझमे इसी तरह शर्मीली आँखों में, दूर शून्य मे देखते हुए 'अफेक्टेड' लहजे मे बातें किया करता था। अब भी उसकी वही हालत है। कुछ सुधरा नही। दुनिया कितनी तेज रफ्तार से आगे निकल आई है, कुछ पता नहीं। श्री का श्री बना बैठा तुकें जोड़ा करता है। मुझे इन कवियो, कलाकारों, निठल्लों से चिढ़ है। वही सपनीली बातें, वही शरबती लफ्फाजी! इस सबसे अधिक भी तो कुछ है? जिन्दगी मीठी-मीठी नींद ही नहीं है। उसमे रतजगा भी है, टूटते-बिखरते खौफनाक डरावने सपने भी हैं, रात-रात भर तारे गिनना भी है, अँधेरे मे आँखें गड़ाये सवेरे की प्रतीक्षा भी है......

वह रात मैं कभी नहीं भूलूँगी। यही अकाल के दिन थे। घटाटोप अँधेरा था। हम लोगों का जत्था पीड़ितों की सहायता के लिए गलियों में घूम रहा था। मुर्दे फुटपाथों पर ठोकरों से रौंद दिये जाते। आर्त चीखते। भात के लिए पुकार। और शाम से ही आँखों मे डोरे डाल गलियों के कोनों में खड़ी, पेट की आग बुझने के लिए अस्मत लुटाने पर उतारू गरीबिनें...

इस पर श्री कहता है हम शान्त रहें। हमारा, नारियो का वर्षों का अवरुद्ध रोष आज कर्मण्य हो उठा है। श्री, तुम अपने कल्पना के हवामहल

में परियो से पंखा झलवाते रहो। हम आज अशान्त हैं और यह अशान्ति हमे अस्थिर कर डालती है। मै जानती हूँ, श्री और मै बचपन के साथी हैं। मैं स्वीकार करती हूँ, उसने मुझ पर उपकार किये हैं अनेक प्रकार की सहायता पहुँचा कर। पर इस सबके बाद भी श्री का मुझ पर प्रेम क्या निरी निष्क्रिय, कीचड़ मे लिपटी वासना नहीं है? वह बातें करता है प्रेम, हवाई और स्वर्गीय, प्लैटोनिक और दाते के प्रेम की। एक जमाने मे वह बहक मुझ में भी थी। (पर श्री, (यदि तुम कलकत्ते की गलियों पर खड़ी विवश बहनों की कातर आँखें देख आते, यदि तुम उन निरीह माताओं की क्षुधा-झुलसी वत्सलता का सुर्खी से स्याह पड़ जाना निहारते; यदि उन अमीरों की निर्मम, लज्जाहीना, लिपस्टिक-रंगी औरतो की तुम एक बार एक झलक पाते, तो ऐसे विरह-व्याकुल यक्ष न बनते।)

माना, प्रेम है। पर प्रेम से बढ़कर भी और कुछ है। वह है भूख। वह है उत्पीड़न। वह है बेमौत मौत। इस सबके लिए तुम क्या कर रहे हो, जो बड़े कलाकार बने फिरते हो। शर्म नही आती तुम्हें?

तुम आते हो और मुझे कहते हो—अमिता, तुम चुपचुप क्यो रहती हो। मै सोचती हूँ वे रुँधे हुए गले जो बहुत कुछ कहना चाहते हैं पर जिन पर जबानबन्दी है। तुम आते हो और कहते हो—अमिता, तुम बदल गई! मैं मन ही मन कहती हूँ हाँ, बदल गई हूँ, और शायद अच्छे के लिए ही।

और निर्मल—वह बड़ा पढ़नेवाला, बड़ा खिलाड़ी, बडा आदमी है! पिताजी उससे मेरे ब्याह की बात कर रहे थे। मैने उसके बारे में कभी सोचा नहीं है। पर श्री से वह अच्छा है। कम से कम प्रैक्टिकल तो है। पर वह ज्यादा पैसे वाला भी है।

निर्मल की डायरी से

श्री कवि है, प्रेमी है यानी पागल है। अमिता एक बहु-प्रशसित, रूपगर्विता, अनावश्यक रूप से दम्भी लड़की है। उसका यह दम्भ और भी बढ़ गया है जब से वह बंगाल पढ़ने गई है। वह समझती है सारे बगाल का दुःख

उसी के सिर पर आ पड़ा है। गरीबों की मदद क्या इस तरह की जाती है? गरीबों की मदद का सच्चा रास्ता है गरीबी मिटाना यानी उनके लिए जो कि बेकार हैं, नया काम जुटाना; और जो मुफलिस हैं उन्हें कमाने की राह पर लगाना।

कमाने की राह! मेरे लिए वह सीधी खुली है। आज फर्स्ट क्लास एम० एससी० करूँगा, कल पी० सी० एस०, परसों डिप्टी कलक्टरी या बिजिनेस। पिताजी का रौब काफी है। और माहवार बारह सौ से ऊपर आय घर बैठे आ जावेगी। पर बंगाल का अकाल-पीड़ित...छोड़ो भी उसे। मै अमिता की तरह सेंटिमेंटल थोड़े ही हूँ। अकाल पर रोते बैठना स्त्रैणता है। वह स्त्री को सुहाती है। मेरे लिए परीक्षा है और है ये हाइसेनबर्ग, प्लैंक, जीन्स और भाभा...

प्रकाश की किरणों का प्रत्यावर्त्तन...रमण का संशोधन...क्वातुम् ईक्वेशन...दिक्कालातीत आइन्स्टाइन का चतुर्थ दृष्टितल...और...

परन्तु अमिता गाती कितना अच्छा है! उद्यपि उसके पिता की पक्के गाने के बारे में हठवादिता मुझे पसन्द नहीं, पर उसकी आवाज मे गहराई है, बुलाहट है, दिक्कालातीत्व है। परन्तु दैव का यह भी कैसा निष्ठुर व्यंग है कि वही अमिता (जो मेरी शायद भावी संगिनी बनने जा रही है) उस मुर्दाफरोशी में कहाँ जा पहुँची! जब लोकसंख्या बढ़ जाती है, युद्धकाल के कारण असाधारण स्थिति होती है, माल्थस शायद कुछ अंश तक सच है। अनाज मानों धन है, खानेवाले मुँह उससे कहीं अधिक हैं, समझो। नतीजा अनाज ऋण होगा। यह सीधी सी बात है। रोने धोने से क्या होगा? पर यह भी एक युग है कि बंगाल में भात पहुँचाना राजनैतिक कार्य क्रम हो गया। मेरे मित्र कहते हैं कि मुझे दिल नहीं है, मैं बहुत अधिक बुद्धिवादी हूँ। मेरी जहन 'बूर्ज्वा' है। हो सकता है। पर मेरा उसपर क्या वश?

वैसे अमिता प्रेम करने लायक है। हो सकती है। प्रेम क्या? शरीर शास्त्रियों ने उसे चीर-फाड़कर सिर्फ कुछ खून की गर्मी, थोड़ा सा नसों का तनाव, कुछ गुदगुदाहट और योग्य इच्छापूर्ति का मार्ग कहकर परिभाषित कर

दिया है। उसके लिए इतना हाय-तोबा क्यो? कहते हैं प्रेमी ऐसे हुए हैं कि जिन्होंने पहाड़ ढा दिये हैं और...होगा, होगा। यह सब गपोड़ेबाजी है। यह विज्ञान का युग है। और फरहाद नहीं, बिजली की सुरग ही पहाड़ फोड सकती है। मगर एक बात जरूर है कि यह श्री इतनी जो प्रेम की डींग हांकता है और यह अमिता जो अपने प्रेम को बगाल की खाड़ी मे डुबोकर अखिल-बगमय कहती हुई बॉटती फिरती है, ये दोनो कही न कही गलत हैं। दोनो आत्म-प्रवन्चक हैं। सचाई यह है कि आदमी के प्रेम का बैरोमीटर आर्थिक दबाव के सहारे चढ़ता-उतरता है। और लाख प्रेम की पवित्रता का ढिढोरा पीटा जाय, श्री और मेरे बीच मे अमिता मुझे ही इसलिए पसन्द करेगी कि मै घर का अच्छा हूं, मकान-जायदाद है, बैंक अकाउंट है, रहन-सहन आलीशान है। और मेरे लिए जैसी अमिता, वैसी केतकी-फर्क क्या पड़ता है? सभी स्त्रियाँ एकसी होती हैं।

पर हो सकता है इसी वजह से मुझ से घृणा करे। उसकी इधर की बात चीत से इतना जरूर जाहिर हुआ है कि वह मुझ से घृणा-मिश्रित प्रेम या प्रेम-मिश्रित घृणा करती है। वाह री अमिता, और वाह रे श्री। तुम दोनों अपने आप से इतना अधिक प्रेम करते हो कि दूसरे किसी तक उसे बढ़ा नहीं पाते। बढ़ाओगे भी तो उसमे तुम्हारा अपना महत्व भी किसी न किसी रूप मे मिला हुआ रहेगा ही अकाल या कविता तुम्हे इसलिए प्यारी है कि उसके सहारे तुम अपना महत्व बढ़ा लेते हो। मै तुमसे बेहतर हूँ कि तुम्हारी कोई चिन्ता मुझे नहीं छूती। मेरा लक्ष्य 'धन' है और उसे मै ऋण कभी नहीं होने दूँगा।"

श्री ने अपनी पुरानी डायरी के से कागज निकाले। पढे और सोचा: अमिता, शी-चुन्, आभा, श्यामा...और...और...

: ७ :

आभा को जब फिर से श्यामा की घटना याद आई तो उसने उसे कहानी की शक्ल देने का यत्न किया। उसे श्यामा की जगह प्रेमा नाम बदल कर लिख डाला। फिरसे उसे पढ़ा:

"प्रेम और, मरण? दो बड़ी भूल।"

"कुम्हलाई दिल की कली कैसे लिखे?...कहीं गाना चल रहा था। मेरे

मन मे प्रेमा की याद तैर आई। प्रेमा मर चुकी है। पर वह साधारण मरण न था।

मरनेवाले मर जाते हैं। रोनेवाले रो भी लेते हैं। पर कहते हैं, समाज का सागर किसी एक ऐसी लहरी के बनने-बिलमने के लिए रुका नही करता। समाज का सागर बे-पार, है, खारा है। उसके ज्वार-भाटे की बात से हमसे क्या? हम तो इतना भर जानते हैं कि लहरी, जो मिट जाती है, योंही बे-असर 'फना' नही होती। वैसा कुछ नही होता। हम तो इतना जानते है मरनेवाले तो मर जाते हैं मगर जीने वालो के दिलपर वह अमिट रेख छोड़ जाते हैं, जो गहरी और अविस्मरणीय होती है।

आप जानते हैं कि शायद हिस्टीरिया जैसा रोग औरतो को अक्सर हो जाता है। औरतों को क्या, असल मे यह कमजोर दिल और दिमागवालो पर जल्द असर करता है। और डाक्टर लोग कहते हैं इस बीमारी पर कोई शारीरिक इलाज नहीं चलता। बीमारी मन की है, तो मन की ही दवा होनी चाहिए। पर मन ऐसी देन है कि वह आदमी के बनाने से किसी तरह अपनी कमजोरी नही तज पाती। कमजोरी मन का स्वभाव है। और हिस्टीरिया ने एक बार उस मन को पकड़ा, फिर उसके चगुल से छुटकारा आसान नहीं होता।

आज यह जो घटना हम सुन आए हैं वह एक स्त्री के हिस्टीरिया से मर जाने की घटना है। वैसे मरना अपने आप मे कोई बड़ी भारी बात नहीं। कई रोज अस्पतालो में और कहा कहां मर जाते हैं मरना, जनमना किसी मिनिट थमा भी है? पर कुछ लोगो का मरना ऐसा होता है कि वह दिल पर एक खास चोट दे जाता है। वैसी मरण-वार्ता सुननेवाले का मन एकाएक दुनिया और समाज की सारी इस अव्यवस्था के प्रति खीझ और पीड़ा से भर आता है। चाहे सुननेवाले का उस मरनेवाले से कोई मेल जोल, कोई खास स्वार्थ बॅधा हुआ न हो।

और जिस युवती मास्टरनी कुमारी प्रेमा का यह अकाल-मरण हुआ है, उससे मेरी जरा भी पहचान न थी, रिश्तेदारी तो दूर की बात है। परन्तु उसके पड़ोसी ने जो आज मुझे उसके मृत्युपूर्व की मनोदशा और जीवन-पद्धति का

इतिहास सुनाया है यह इसबात का स्पष्ट साक्षी है कि यह बात मुझ से अपने तक सीमित रक्खी न जाएगी। मेरे मन ने यह बात सुनकर जो व्यथा अनुभव की है, वह बाँटनी ही होगी, इसी भावना ने मुझे आज उस बात को लिखने पर बाध्य किया है।

मास्टरनियों का जैसा जीवन होता है, वैसा ही कठिन प्रेमा का जीवन था। सौ-डेढ़ सौ माहवार मिल जाते थे, छोटी क्लासों की लड़कियों को गाना सिखाना होता था। प्रेमा को मैंने उसके मरने से पूर्व एक दो बार शायद देखा भी था। उसके रूप मे विधाता ने कोई खास कौशल नहीं दिखाया था, तो भी कुरूपा तो प्रेमा थी नही। चुस्ती से रह लेती थी। और लोगों के लिए, उनकी सस्ती सौंदर्य-भावना के लिए इतना-सा बाइस भी लावण्य कहलाये जाने के लिए काफी होता है।

तो वह कहानी जो हम कहने जा रहे हैं, वह उसी एक जीव की कहानी है। जिस शहर में यह लड़कियों का मदरसा था और उसमे प्रेमा मास्टरनी थी; वहीं एक गली के एक पुराने मन्दिर के पास दुतल्ले पर उसी गाँव के वकील रहते थे। मामूली आदमी थे, साफ़-तबीयत, लाग-लगाव कुछ जानते नही थे। बाल कुछ पक आए थे, वैसे खिचड़ी ही समझो। नाम उनका है दयाराम और उनकी एक श्रीमतीजी हैं उनसे वज़न, कद, लम्बाई चौड़ाई मे ढाई गुनी और मिजाज मे ठीक उनसे विपरीत। नाम तो है बड़ा सुरीला कलावती, मगर है वैसे पूरी त्राटिका। प्रेमा इस कलावती को भी संगीत पढ़ाने घर जाया करती है।

दुतल्ले पर का मकान। तीन कमरे। अन्दर के कमरे में उस बेहूदा बाजे हारमोनियम पर कलावती चीखने की कोशिश कर रही है, 'प्रिया बिन लगत अलोनी रात' मगर 'अलोनी' पर आकर उनका सलोना स्वर ऐसे टूट पड़ता है और संगति बिगड़ जाती है कि उस प्रेमा शिक्षिका के कान उसे सुन नहीं पाते और वह सोचती है कि कहीं यह बाजा हारमोनियम अगर बीच ही मे कहीं टूट जाए तो बहुत अच्छा हो। इस दयाराम-कलावती के घर में एक और प्राणी है। युवक है, सैलानी है और विचित्र है। उसका नाम है अमरनाथ।

अमरनाथ शुरू-शुरू में प्रेमा से बहुत कतराया-कतराया रहता। मानों वह कोई अछूत लड़की हो। मगर प्रेम के राज्य में नफ़रत की निगाह भी कब दिलचस्पी की चाह में पलट जाती है, पता नहीं चलता। और दुश्मन भी दोस्त बन जाते हैं।

धीरे-धीरे अमरनाथ की साइकिल प्रेमा की राह पर अक्सर सबेरे-शाम मुड़ा करती। फिर प्रेमा जहाँ रहती थी, उसके सामनेवाले पानवाले से गहरी दोस्ती। फिर कभी प्रेमा की कुछ छोटी मोटी सेवा। बाजार की खरीद-फरोख्त वगैरह में मदद, कभी कपड़े सीने भी दिए जाने लगे। अब की कपड़े सीकर आने में हुई देर और अमरनाथ बेतकल्लुफ उसके घर पहुँच गया। प्रेमा चार-पाई पर लेटी बीमार पड़ी थी। तीमारदारी की जिम्मेदारी का खयाल न जाने कैसे विद्युद्वेग से अमर के दिमाग में चमक गया।

फिर रोज़ दवा आने लगी। शाम को बड़ी देर तक अमरनाथ वहीं वक्त बिताने लगा। उसके दोस्त और दूसरे अड्डे छूटे। अमरनाथ कुछ भला आदमी बनता जा रहा है, ऐसी चर्चा दयाराम कलावती ने की। पर उन्हें प्रेमा को अमर को इतना मुँह चढ़ना पसन्द नहीं आया। आखिर समाज भी तो कुछ है। हैसियत का खयाल भी होना चाहिए। और इस आवारा छोकड़ी का क्या ठिकाना? कौन जात, कौन बिरादरी की है, कौन जाने? आखिर कलावती ने प्रेमा की ट्यूशन अपने घर से छुड़ा दी। इतने ही से काम नहीं पूरा हुआ। अमर को हिदायतें दी गईं कि वह प्रेमा के यहाँ न जाया आया करे। अगला कदम यह था कि अमर को उस शहर से बाहर कहीं दूसरे शहर में मिल में नौकरी करने भेज दिया।

अब प्रेमा और भी अकेली पड़ गई। वह अपने सूने क्षण पनघट की सीढ़ी पर, बरगदों की छांह में, बादलों के आने के पहले आसार धूलभरी पुरवैया में, कहीं भी बैठकर, काटने लगी। लोग तरह-तरह की बातें करने लगे। लोगों का क्या है? हजार मुंह, हजार बातें। जो खुद करते हैं, पर कहना नहीं चाहते वही औरों पर मढ़ देते हैं। या फिर जो खुद कर नहीं पाते उसी का औरों पर आरोप करके खुश हो लेते हैं।

देहाती स्कूल के पास ही एक छोटी सी लाइब्रेरी है। वहीं कहीं से कुछ पुराने अखबारों की फाइलें मँगाकर प्रेमा पढती है। उससे उसके चित्त में और भी उचाट आता है। वह अक्सर कविताएँ पढ़ती है और महापुरुषों की प्रेम कहानियाँ! और अपने आस-पास भी वही देखती है कि पड़ोसी गँवार की नई बहू हल्दी रंगे हाथो से कलछी उठाए जा रही है; जमीदार पचपन की उम्र मे चौथी बहू ब्याह लाए हैं; विधवा, कुलटा तुलसा चोरी-छिपौवल से कुकर्म करती है: और होली के गन्दे गाने गानेवाली औरतें भी कम मज़ाक का विषय उसे नही बनाती। पर प्रेमा है कि वह अकेली है: और उसका यही अपराध है। अतिशय अकेले रहने के कारण प्रेमा में पहले कुछ विचित्र मानसिक एकाग्रिताएँ दिखाई दीं, वह घटो सुरभित फूलों को सूघती रहती, घंटों बागों में कोयलों की पुकार सुनती और उन्हें चिढ़ाती रहती; बारिश की लड़ियों मे खुले आम नहाना उसके लिए कोई नई बात नहीं थी।

पर अब यह विचित्र बात हुई कि उसे मूर्च्छाएँ आने लगीं। पहले वे कुछ समय के लिए ही होतीं, पर फिर वे लम्बे अर्से तक टिकने लगी। पहले वे मूर्च्छाएँ स्तब्ध, मौन, केवल शरीर कड़ा करके हाथ पैर पटकने तक ही थीं; फिर वह उसमे हँसने-गाने, उन्माद के और लक्षण बताने लगी।

अन्तिम दिन उसने खूब शृंगार किया था।फूलमालाओं से अपना शरीर लाद लिया था। अच्छे वस्त्र वह पहने थी। "शूली ऊपर सेज पिया की..." गाते गाते वह घर से बाहर निकली। बाहर चाँदनी रात छिटकी थी आकाश से सितारे कौतुक देख रहे थे। उसने इत्र की भाँति अपने शरीर पर किरासिन मल लिया और 'प्रिय अमर' के नाम चिट्ठी और बचा खुचा कुछ उपहार रख, उसने अपने तन-मन की होली कर डाली। हिस्टीरिया की इस भयानक अवस्था में वह अट्टहास कर रही थी और आत्म-पीड़न मे खुश थी। वह व्यथा का 'दर्शन' कर रही थी, पीड़ा मे पिया को ढूँढ़ रही थी।

पर प्रेमा की सुनती हूँ, तो इतनी चकित क्यो हो रही हूँ? आज की कई स्त्रियाँ, कई पुरुष इसी प्रकार की अवरुद्ध, अपूर्त, अतुष्ट वर्जनाओं के शिकार, जो घुल-घुलकर झुलस-झुलसकर जीवित होकर भी तिल तिल मर रहे हैं! क्या

दयाराम-कलावती का उस प्रकार जीना या अमरनाथ का और किसी प्रेमा का नहो तो क्षेमा पर डोरे डालना और इसी गति से चलनेवाला हमारी समाज-व्यवस्था का यह 'चूँ-चरर-मरर चूँ-चरर-मरर' घिसटने वाला रथ, सब हिस्टीरिया के ही प्रच्छन्न-अप्रच्छन्न लक्षण नहीं हैं?

पर इन सब में मुझे प्रेमा की भूल दिखाई देती है, जो कि आज के हमारे जीवन की भूल है। दो बड़ी भूल। प्रेम और मरण? दो बड़ी भूल!"

पढ़कर उसने उस कहानी को फाड़ डाला।

... ...

: ८ :

श्री की डायरी से—

स्टेशन पर प्लेटफार्म से सटकर सेकेण्ड-क्लास वेटिंग रूम है उसी के पास 'बार एन्ड रेस्टराँ' है। उसके दोनो ओर जालीवाली खिड़कियाँ हैं। एक खिड़की से प्लेटफार्म पर आने जाने-वाली भीड़ और रेल की प्रतीक्षा में जमा हुआ असबाब दिखाई देता है। इस खिड़की की जाली की खूबी यह है कि बाहर की दुनिया अंदर से दीख सकती है। बाहरवाली दुनिया को हक नहीं है कि जब तक उसकी जेब गर्म न हो, अंदर का दृश्य देख सके। जाली के पास एक बड़ी सी गोल मेज पर महीन मेजपोश बिछा है। श्री उसी मेजपोश की शून्याकार सफेदी पर आँख गड़ाये श्री बैठा है।

ब्वाय आकर पूछ गया...'क्या लेंगे हुजूर?

कोई जवाब नहीं। श्री ने आँखें मेजपोश पर से उठाकर दीवाल पर टगे टाइमटेबुल की ओर फेर लीं।

फिर वही सवाल क्या लेंगे हुजूर।

श्री ने जैसे कुछ सुना नहो। फिर सहसा झुंझलाकर मानो अपने आप से ही कहा : कुछ भी, कुछ भी हाँ, बीअर...।'

टाइमटेबुल से ऊपर उठकर चाँदनी रात के एक बड़े लैंडस्केप पर और वहाँ से ऊपर गोल गोल, निरन्तर गति से चलने वाले, पंखे की ओर श्री घूरने लगा। रेस्टोरा के उस कोने मे, जहाँ श्री बैठा था, और कोई नहीं था। अल-

मारियों मे करीने से रखी शराब की बोतलो, सिगरेट के टिनो और बिस्कुटो के बक्सो के बीच बने हुए रिक्त वह देखता रहा। फिर उसकी दृष्टि एक बडे आईने का अवलोकन करती हुई जो कि जाली की खिड़की से विरुद्ध दिशा मे लगा था, खिड़की की ओर घूम गई।

उधर देखना था कि श्री की आँखें वहाँ गड़ गई। बड़ी देर तक उधर ही चिपकी रहीं। वहाँ कौतूहल का कौन सा विषय था? कोई अनिद्य-यौवना परी, कोई महापुरुष जिसे देखने की चिरपालित लालसा हो, कोई दर्दनाक नाटकीय भिखारी? नही, दो व्यक्ति थे। दोनों ही पुरुष थे। एक फौजी वर्दी मे लैस, मुँह मे अधजली सिगरेट दबाये सामान के पास अकड़ से खड़ा था। दूसरा एक कुली मामूली फटे से खाकी कपड़े पहने, दीनता की मूर्ति। श्री शायद इन दोनो व्यक्तियों कों जानता था। इसीलिए वह आँखे फाड़ फाड़ कर उनकी ओर देख रहा था।

ब्वाय ने बीअर की बोतल जरा जोर से टेबल पर रखी ताकि आवाज से श्री बाबू की तन्द्रा कुछ भग हो। मगर श्री बराबर बाहर ही की ओर देखता रहा। जाली मे से अब दिखाई पड़ रहे थे दो मारवाड़ी, एक सिक्ख, कुछ असबाबवाले, एक दूसरा कुली, हुक्का, होल्डाल, दो ऊँची एड़ियो पर भड़कीली साड़ी, फलवाला और उसकी टोकरी पर आकर्षक ढंग से सजे हुए सेब और भूखी तथा निर्बल दृष्टि से उन सेबों की ओर देखता हुआ एक गरीब बच्चा...।

श्री चित्रकार है। यह आप उसकी अटैची पर लिखे नाम से ही जान गये होंगे। असल मे वह किसी गहरे दुख में डूबा है और गम गलत करने के लिए उसने 'बार' की शरण ली है। यह उसके अस्त व्यस्त बाल सकपकाये से ढंग से जाहिर है। असल में श्री अमीर है, मगर कहीं कुछ सिरफिरापन है जिससे अमीरी मे बँधे रहने की इच्छा नहीं है। यह उसके कीमती मगर लापरवाही ढंग से पहने रेशमी कुरते पाजामे से स्पष्ट है। असल मे बाहर जिन दो व्यक्तियो को उसने देखा है, उनमे से उस फौजी की निश्चिन्त और प्रसन्न मुद्रा देखकर उसे कुछ कुढन सी हो रही है। शायद वह श्री का साथी रहा हो, और कुली बीते जमाने का एक सहपाठी जो अपनी पढ़ाई, महज गरीबी के मारे, आगे नहीं

चला सका। श्री इस गाड़ी पर किसी मकसद से आया है किसी को पहुँचाने नहीं किसी से बिदा लेने। जानेवाले से उसे बिदा नही लेना है, आनेवाले से वह बिदा माँगेगा।

टन्-टन्-टन्, लाइन क्लियर की घन्टी बजी। श्री ने कलाई पर बाँधी घड़ी की ओर देखा। फिर रेस्टोरा में लगी निर्विकार भाव से धडकन गिनती बड़ी घड़ी की ओर। फिर उठकर वह टाइमटेबुल देखने लगा। टाइमटेबुल के मध्य मे एक नकशा है जिस शहर से वह जा रहा है, नकशे मे वह कितना छोटा बिन्दु है। फिर कई आड़ी तिरछी फटी कटी लकीरें, और मद्रास, जहाँ से यह ट्रेन आ रही है, उससे आगे अमृतसर और इससे भी परे श्रीनगर की फौजी छावनी।

अब पन्द्रह मिनट भी कहाँ रहे। उसे भी इसी ट्रेन से जाना है। मगर एक बार जाने से पहले वह जाली से दिखाई देने वाली रंगीन दुनिया को आँख भर देख लेगा: लहरिया साफा, अचकन, कोई राजपूत ठाकुर हैं। फिर एक फल वाला, फिर खिलौनो वाला, मुल्ला जी की बकरे जैसी दाढ़ी। काले आबनूस की तरह कोई ईसाई काले ही सूट मे। फिर एक भद्र महिला, साधारण, दो बच्चो की माँ। सफेद झक कपड़ो मे एक देश भक्त। फिर कुछ समय के लिए कोई नहीं। अखबार बेचनेवाला लड़का, उसके हाथ मे समाचारो की सुर्खियों का पोस्टर, जिसमे लाल तीन रंगी अक्षरो मे छपा है एक स्त्री की आत्म हत्या। फिर आसमान का एक गहरे पानी सा नीला टुकड़ा, उस ओर दीखने वाला रेलवे का पुल और एक भक-भक करता हुआ इजन। फिर सुनसान।

कोलाहल, घटियाँ, भगदौड़, बेचने वालों की मिश्रित आवाजें। प्रवासियों की धक्कम-धुक्का। ट्रेन आ पहुँची। रुकी नहीं कि दरवाजे खुले। फिर भीड़ भड़क्का, धींगामुश्ती, सामान का फेंका जाना, उतरने वालों पर कुलियों का सामान चढ़ा देना। स्त्रियो के आसपास मँडराने वाले कुछ मनचले निठल्ले बाबू।

इस सारी अविश्रान्तता और कलह-संघर्ष का, आराम और सुविधा के एकान्त कोने में बैठकर घूरने वाले, अखबार मे पढ़कर ही बाहरी जीवन के

संघर्ष का परिचय पाने वाले फर्स्ट-सेकेन्ड क्लास के यात्री। सहसा अन्तर्मन की दुनिया में उसे दिखाई पड़ी अमिता रानी उसी मदभरे लिबास में, वैसी ही दिल-रुबा, शर्मीली! फिर चाय के दौर, दबी दबी हँसी, उसके चित्रों मे पाये जाने वाले एक से चेहरो पर रानी का आरोप, चोरी-चोरी चाँदनी मे किये हुए वे भ्रमण और न जाने क्या-क्या?

ख्याति के मृगजल के पीछे पैरिस की चित्रशाला मे फिर श्री की कला कृतियों का प्रदर्शन। इसके बाद एक काली छाया, मुर्दे, कंकाल, फौजी टोप, डबल मार्च, ब्रेनगन्स, नो पासपोर्ट, फौज-मात्र से उसकी घृणा......।

अन्तर्मन की इस जाली दुनिया से वह असली दुनिया के प्लेटफार्म पर आ गया। सचमुच की काश्मीर मेल के सामने।

यों श्री युद्ध के मोरचे पर चला गया।

: ६ :

आभा को एक पुरानी स्मृति बार बार कुरेदती है :

कुछ बातें ऐसी होती हैं कि जिनके बार-बार मन मे जग उठने मे, जैसे अपने आप पर कुछ झेंप और कुछ ममय रोष हो आता है, जिन्हे हम चाहते हैं कि वे मन से किसी तरह टल जॉय पर जो कभी नहीं छूटतीं—ऐसी ही याद आभा के मन में ललाम के प्रति है। वह सुधि कितनी पुरानी है। अरे छः बरस बीत चुके, पर अब भी वह कितनी ताजा और निकट लगती है। वह सुधि जैसे मन से लिपट जाती है। उससे मनवा कर छोड़ती है कि वह है, और गलत नहीं है। वह चाहकर भी मन से नहीं छूटती।

वह सुधि उन दिनों की है जब आभा की शादी हो गई थी और आज तक बड़े ही लाड़ और प्रेम से जिन जिन स्नेहाल आत्माओ ने उसे पोसा उन्हीं की ऑसू भरी ऑखो से वह विदा हुई थी, न जाने कितने योजन दूर के परदेश के लिये। एक अपरिचित लेकिन जिस पर उसने होम की धुएँ भरी आग के सामने पाणि-स्पर्श कर सब कुछ न्योछावर कर दिया ऐसे व्यक्ति के साथ, न जाने कैसी नवीन अजनबी दुनियॉ में पहुँचने के लिये। सहेलियो के साथ खेलने वाली अबोधा के गात पर जब हल्दी के स्तरों के साथ नव-वधुत्व चढ़ता है तब जैसे

उसमे की अबोधता संचित और गोप्य हो जाती है, मानों वह अब वह इतना जान गई है कि सारा अनजानपन उसे एक अलक्षित के आगे खोलकर रख देता है। उसे कुतूहल है, वयोन्माद है, और भय आशका। वह छिन-छिन मे भरा-भरा-सा और रीत-रीत जाने वाला नव-वधू का उर पाकर आभा चली अपनी ससुराल।

और सुहागरात भी मनी। जैसे मना करती है। उसके पति श्री ज्यादह पढे लिखे थे, समझदार थे। उसने धर्म की किताबें पढ़ी थी, सिर्फ पढ़ने के लिये। वह रात उन दोनो के मनो को परस्पर निकट लाने के लिए शायद कुछ न कर सकी। क्योंकि अपनी चौड़ी चौडी बाहो मे कस कर भर लेने को आतुर था निरे पतिराज को पौरुष। वह नही जानता था कि आभा का मन इतना सरल नही, वह नहीं बाँधा जा सकेगा इतने जल्दी। आभा के पति श्री प्रसन्न हुए, तृप्त और सुखी। परन्तु रूप की वह कोमल कली, वह रात भर फूल फूल कर रोई। उसके मन मे पति के प्रति एक प्रकार का अविश्वास, एक तरह का डर सा बस गया। क्या पति ऐसे ही निर्दयी निठुर, संगदिल आदमी को कहते हैं।

पर आभा ने रामायण सुनी है। पुराणों की कथाएँ भी पढ़ी हैं। मन्दिर-दर्शन को नित्य वह गई है। माँ, बुआ, जीजी, पड़ोसिनें सब के मुँह से सुना है कि पति देवता हैं। ब्याहता का सब कुछ उसी के लिये है, अरे उसी एक के लिये। आभा ने तुलसी के पास कई दिनो दीप संजोये हैं। सावन-चौमासे व्रत रक्खे हैं। शास्त्रों में सुना है सती क्या होती है। सुनी है सीता-सावित्री की कथा। पर वह नहीं समझ सकी कि यह पति क्या है, जो एकदम अपरिचित होकर, देह के इतने निकट आने का शास्त्रबद्ध आग्रह करता है। यह क्या है पति? और तभी उसके मन में जैसे किसी ने चिकौटी सी काट कर कह दिया, क्या यही है मेरे मन का देवता? उस शका मे से एक खीझ और उससे भी परे झीनी-झीनी दीखनेवाली ललाम की बचपन की वह मुद्रा उसकी आँखो मे जैसी जम गई—जब वह और ललाम कही दूर टहलने निकल गये थे—बादलों के रग गिनते और इन्द्रधनुष का बनना-मिटना देखते हुए—लौटते हुए अँधेरा हो गया और बारिश जोरों से होने लगी। आभा का पैर रपटन भरी गैल पर

फिसल गया था और ललाम ने उसे उठा लिया था। कविजन कहते हैं 'नेह की राह निपट रपटीली' तो भी—

'लगा तो नही?'

'नही, पर मेरी साड़ी—देखते नही, सब कीचड से सन गई'

'कपड़े का क्या? वह बदला जा सकता है, पर चोट तो नहीं लगी?'

'नहीं'

'झूठ कहती हो!'

'ललाम, मुझसे आगे न चला जायेगा। चलो, हम यहीं रुकें।'

पुराने मन्दिर की सहन मे दोनों पहुँच गये। मन्दिर जीर्ण था और लोगों ने उसे उपेक्षित सा छोड़ दिया था। खभो पर सुन्दर शिल्प उत्कीर्ण था। आभा उससे सट कर खडी हो गई। वर्षा का जोर बढ रहा था। साड़ी निचोड़ते हुए आभा सिहरतो खड़ी थी। ललाम ने कहा—'यों हवा में न खड़ी रहो। गीले कपड़े और उसमे ऐसी आँधी। चलो हम मन्दिर के अन्दर चलें।'

मन्दिर का अन्तर्भाग अँधेरा था। और गहरे मे सीढ़ियों से उतरते हुए ललाम ने आभा का हाथ पकड़ रखा था। पैर गीले और कीचडसने होने से अँधेरे में आभा का पैर फिसला और वह ललाम के सहारे किसी तरह बच गई। बाहर बिजली कौंध रही थी। मीरा की भाषा में 'दामिण छोड़ी लाज।'

वह आभा का नव-वय का प्रथम पुरुष-स्पर्श था। परन्तु आज भी उसकी स्मृति मादक और सौंधी मिट्टी की भाँति मन को जैसे व्याप लेती है।

फिर तो ललाम और आभा बहुत निकट आते गये। पढ़ते तो दोनों बराबर साथ-साथ। सैर-सपाटे, मेले-ठेले जाते तो दोनो साथ-साथ। बागों की बावड़ी मे तैरते और फल चुराने मे भी दोनो साथ-साथ रहते। आभा के पिता उदार-मत के नही थे। उन्होंने छूट नहीं दी थी कि आभा लड़कों मे खेले, हँसे, बोले, जाया करे। मगर वे सब दिन आज तो निरे सपने हैं।

यहाँ सुसराल मे आभा के मन के विपरीत सब कुछ है। यहाँ पर्दा है। यहाँ घर की चहारदिवारी है, यहाँ पढने को कुछ नहीं है, उसकी प्रिय रुचि संगीत के विकास के साधन नहीं हैं। पति है, परन्तु संगीत के लिये उनके कान शून्य-प्राय

हैं। उसे फिर याद आगई वह रात जब शीतल चाँदनी बिछी थी। व्योम और धरा जैसे एक रजत-रस से नहा उठे थे। ललाम ने प्रस्ताव रखा था नाव में चलने का। वे लोग नदी किनारे पहुँचे तो शाम को सब नाव-वाले अपने घरों को चल दिये थे। शरारती ललान ने एक नाव जो रस्सी से बँधी थी छुड़ा ली और वह चल पड़ा। डाँड़ भी काफी मज़बूत नहीं थे। धारा में वेग था। आभा किनारे पर रह गई थी। वह नहीं सोच पाई कि क्या करे? उसका दिल धड़कता रहा कि कहीं ललाम की नाव उलट न जाये। क्यों थी तब उसकी इतनी आत्मीयता, ललाम के प्रति, जो उसके जात का नहीं, पात का नहीं, जो उससे भिन्न-संस्कृतिवाला, शिक्षा दीक्षा, सामाजिक प्रथा में भिन्न? परन्तु इस 'क्यों' का कोई उत्तर है? यह सदियों का अनुत्तरित प्रश्न है, कोई आर्थिक समाधान करनेवाला भौतिक दर्शन इसका उत्तर नहीं दे पाया।

स्नेह और आकर्षण का एक कारण समान-रुचि है। आभा का कंठ सुन्दर था और ललाम वंशी बजा लेता था। उसी चाँदनी रात की सैर में ललाम के बहुत आग्रह करने पर आभा ने कोई पद गाया था। वैसे आभा बहुत संकोची थी और वह किसी के आगे गाती नहीं थी। परन्तु वह स्वर-लहरी, वह नीचे बहने वाला जल, वह नौका, और आकाश से शरारत भरी हँसी हँसने वाले तारे वह सब आभा के लिए आज निरा आभास बन गया है, जो कभी मूर्त नहीं होगा।

पति श्री दफ्तर से लौट आये थे। उनके कर्कश स्वर ने जैसे उसके सपनों की कड़ी तोड़ दी। 'सुना आभा, अपने शहर में कोई बड़े नेता आने वाले हैं। बड़ी तैयारियाँ चल रही हैं। कोई सम्मेलन होने वाला है।'

आभा ने सुना, अनसुना कर दिया—'होगा।' साड़ी का पल्ला सँभारते हुए वह उठ कर चलने लगी।

पतिदेवता ने कहा—समाजवादियों की विशेष परिषद् है। सभी प्रांतीय कार्यकर्ता एकत्र होंगे। जानती हो! उसमें हमारे प्रांत के नेता ललाम देव भी आने वाले हैं।' वह हाथ में का 'फार्म' पढ़ते जा रहे थे।

आभा जैसे सुनकर कुछ ठिठकी। सहज भय से हाथ आगे बढ़ा कर कहा—देखूँ, पर्चे में क्या है।

पति ने फार्म आगे बढ़ा दिया।

आभा ने पढ़ा। और जैसे उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह यन्त्रवत रसोई घर मे चली गयी।

रात को दुमंजले की छत पर सोने के कमरे में आभा अकेली जागती बैठी है। अँधेरा है, और वातायान से एक तारा दूर पर दिखाई दे रहा है। शहर का कोलाहल कभी का जैसे सो गया है, दूरी मे सिमिट कर खो गया है। आभा अनमनी और उदास, अकेली बैठी है। कोने मे उसका प्यारा वाद्य इसराज मौन, स्तब्ध पड़ा है। और वह विचारो मे डूबती-उतराती बैठी है। आँखों से उसके आँसू ढलक रहे हैं। और मन न जाने कहाँ पीछे-पीछे उचटा जा रहा है, शादी के बाद शुरू-शुरू में ललाम से कुछ चिट्ठी-पत्री भी होती थी। पर बाद में वह जेल चला गया, और दिल को समझाने का एक बहाना जो बचा था, वह भी टूट गया। पति तब सरकारी दफ़्तर में काम करते थे और ललाम के और उनके आदर्शों मे जमीन आसमान का फर्क था।

उसकी पति के प्रति विरक्ति यों बढ़ती गई।

एक बार अखबार मे पढ़ा था ललाम जेल से छूट गया है।

खूब सत्कार-समारोह भी हुआ। फिर कभी पढ़ा, वह अमुक-अमुक स्थान पर सभा में यों गरजा और...सरला के मन मे कई बार हुआ है कि वह उसे एक पत्र लिखे। पर कोई कारण नहीं दिखाई देता, कोई बीच की कड़ी नहीं जान पड़ती! वह कैसे शुरू करे? और ललाम उतना ही दूर हो गया जैसे वातायन से झाँकने वाला वह दूर का सितारा।

आभा रात भर सो न सकी। बेचैनी से करवटें बदलती रही।

आखिर वह भी दिन आया। जब ललाम उस नगर में आया था—जुलूस बड़ा भारी निकला था। सरला अपनी छत वाली खिड़की से देखती रही। उसका मन जैसे उड़ूँ-उड़ूँ रहता था, परन्तु पखों में बल बाकी नहीं था। पैरो में जंजीरें पड़ीं थीं और वे उसने अपने ही हाथों पहनी थीं—अब उन्हें खोलने की विधि वह भूल चुकी थी। उसने भी श्रद्धा से अवनत होकर प्रणाम किया। पता नहीं उस बेचारे ललाम को मालूम भी थी कि यहीं उसकी शैशव-संगिनी आभा

भी रहती है—यहीं कहां—अपार जनसमूह की गर्जना और श्रद्धा भरी आँखो से उठ कर, इधर कहीं दो आँखे उसे उसी जन्मजन्मान्तर की पुरानी ममता से देख रही हैं, जिससे उन्होंने तब उसे निहारा था, जब वह स्कूल से पिटकर आया था और आभा ने उसे सहलाया था, या वे ही आँखे जिन्हें नये-नये वनस्पति-विज्ञान सीखने वाले ललाम ने पुष्प की उत्पत्ति की कथा सुनाते हुए शर्म से गड़ कर, गर्दन को हलका सा झटका दे कर, कहा था 'हम नही सुनना चाहते यह सब।' ललाम आज दूर, जनता से घिरा वाहन मे बैठा, फूल मालाओ से लदा, लोगो की आँखो का तारा है परन्तु इन तारो के पीछे क्या वह शुद्ध हृदय, वह सात्विकता कहाँ है—जिसके कारण न्यौछावर की भावना से ओत प्रोत है, जिसमे देना ही पाना है......।

शाम को सभा मे नेता ललाम को हार पिन्हाये गये। आभा के पति भी सपत्नीक वहाँ प्रतिष्ठितों मे विराजित थे। सभी संस्थाओं से हार पिन्हाये गये। महिलाओ की किसी सस्था का नम्बर आया, तब मंत्राणी की हैसियत से बहुत टालने पर भी वह भार आभा पर पड़ा। वह मच तक लड़खड़ाते पाँवो किसी तरह, पहुँची, माला उसने ललाम के हाथो थमा दी। और वह जल्दी से भाग कर आना चाहती थी कि जैसे ललाम की आँखों ने और—"कौन, तुम?"—के शब्दों ने उसे रोक लिया। वह ठिठक गई।

"हाँ, आभा ही हूँ"

"तुम तो बहुत बदल गई हो?"

"और आप भी तो?" आभा ने धीमे से कहा।

"मुझे पता ही नहीं था कि तुम भी यहाँ रहती हो।"

"क्यो पता होगा बड़ों को, छोटे का।"

"बडे-छोटे का प्रश्न नही, आभा—मैं जेल गया तब से सब रिश्तेदार, मित्र, कुटुम्बी सबको त्याग चुका हूँ। मैंने यह नया जोग जो पहन लिया है।"

इतने में दूसरे व्यक्ति का नाम पुकारा गया। वह हार लेकर आगे बढ़े। आभा मूक, वैसी ही दबे पैरों लौट आई। फिर सभा के बाद आभा ललाम के पास पहुँची—लेकिन वह इतना ही कह पाई थी कि "काश हम-तुम दोनों

थोड़ी देर को मिलते, बैठते, बातें करते" कि इस बीच में नारे लगने लगे। और जनसमूह ठेलकर नेता ललाम को एक ओर अनिच्छा से खींच ले गया।

पति सभा से लौटते हुए टीका टिप्पणी कर रहे थे—क्या कहेंगे ये नेता लोग नया ? इनके पास अक्ल तो है नही। वही घिसेघिसाये स्लोगन्स। बस लच्छेदार, मुहाविरेदार भाषा से ये समझते हैं कि लोगों को भुलावे में रख सकेंगे सो कब तक ?

आभा सुन रही थी। परन्तु आत्मा उसकी क्रंदन कर रही थी। भीड़ में जैसे वह खो जाना चाहती हो। चौराहे से वे मुड़ रहे थे।

आभा कुछ भी कह नहीं सकी, न कह सकती थी ! उसके अंतस्तल में वही एक घुमड़न, वही एक कुंठा बराबर थपेड़े मार रही थी ! उसे याद आया बचपन मे खेला हुआ वह नाटक, जिसमे उसने राजकन्या का काम किया था, और उन्होंने देवदूत का......

उसके पति ने बुलाया—"अरे आभा कहाँ चली गई ?" और वह जल्दी से पति के पास पहुँच गई—ताकि वह या कोई संदेह न करने पाये। आज उसके मस्तिष्क मे तो यही घुमड रहा था—"काश हम-तुम दोनों..." इससे आगे वह सोच भी नही सकती थी—और फिर अब सोचने से लाभ भी क्या ? अब तो वह किसी की पत्नी है। वह आभा एक व्यक्तित्व रही। पति देवता की वह कुमारी बलि हो चुकी है।"

और ललाम ? पता नहीं कहाँ है ?

ललाम कहाँ होगा ? उसने जीवन मे पुरुषों के हाथों ठगे जाना ही सीखा है क्या ? उसने अपने नित्य के अभ्यास की तरह कागज लेकर लिखना शुरू किया—

तुम्हे भूल सकना नहीं है सहज
ज्यों
न हो सकेगी विलग गंध से रज;
मिले, ज्यों कि अक्षर मिले वर्ण से
या मिले वर्णभी व्यंजना-स्वर्ण से

तथा वाक्य से ज्यों मिले मूक कागज़
तुम्हें भूलना है खुदी भूलना
ज्यों
गगन में अगुण डालकर झूलना
अपूरण सुखों के लिए पैंग भरना
'अधर' में लटक, 'अंक' में शून्य भरना
झरें, बन, अकेले ? वृथा फूलना... ...

: १० :

"इहि न पलटत वार !"

तुलसी बाबा कह गये—साँप, घोड़ा, स्त्री, राजा, नीचा आदमी और हथियार इन्हें नित्य परखते रहना चाहिये। पलटते देर नहीं लगती। पर आभा सोचती है कि उसके जीवन मे जो एक-एक कर पुरुष आये, वे सब नीच थे यह नहीं कहा जा सकता। शुरू मे वे कितने भले जान पड़ते थे। क्या श्री ने मीठे-मीठे आश्वासन नहीं दिये, क्या उसने मिसरी और शहद से भरे पत्र नहीं लिखे, क्या उसने उसके जीवन में वह शरद की निर्मल चाँदनी और सियाले की नरम धूप जैसी सुखदता नहीं फैलाई। पर बाद में क्या हो गया ? आज वे सब जैसे आभा को भूल गये।

परित्यक्ता आभा सोच रही है कि श्री के बाद सत्यकाम आया। पर वह तो वैसा नहीं था। वह कितना भला था। जब पहले मिलने आया—अपनी बहिन विद्या को लेकर। और बाद में वह पिकनिक के दिन ! मगर सत्यकाम ने मेरा पूर्व-चरित सुना और वह भी जैसे मुझे उतरन समझकर छोड़ गया। स्त्री के साथ यह सलूक आज से नहीं, राम और दुष्यन्त और नल और बुद्ध के ज़माने से चला आ रहा है। सीता पर कलंक लगाने के लिए रावण का बहाना भी हो सकता है पर शकुन्तला को भूल जाने का और दमयंती को जंगल में छाया-सी छोड़ जाने का क्या कारण था ? और यशोधरा ने राहुल को जन्म दिया था, क्या

यही उसका अपराध था। सम्बोधि-प्राप्त करने का क्या यही एक तरीका था? .. आभा यों सोचती रही और सोचते-सोचते उसका मन न जाने कैसी अज्ञात, अकारण उदासी से भर आया।

उसने मनोविश्लेषण की पुस्तक मे पढ़ा था कि इसे 'Flottierende Angst' कहते हैं! अज्ञात, अकारण, अस्पष्ट, उद्देश्यहीन दुश्चिता!! वह एक क्षण मे सोचती बेबी को दूर देश मे बोर्डिंग मे रखा है। कई दिनो से चिट्ठी नहीं आई। कही वह बीमार तो नही है? इन सार्वजनिक सस्थाओं मे कोई किसी का नहीं होता। सब अपने-अपने लिए देखते हैं। और जिस कालिज मे वह काम कर रही थी उसी की दशा देख लें.. क्या उसकी चिता का कारण आर्थिक है? ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योकि उसकी आवश्यकताएँ बहुत थोड़ी हैं और वह हर महीने कुछ न कुछ रुपया बचा ही लेती है। हृदय मे उठनेवाले इस अनामिक, आर्त, पागलपन को क्या कहिये? क्या इसकी चिकित्सा और निदान इतिहास के पास है? या अर्थशास्त्र के? या समाजशास्त्र के?

शायद मनोविज्ञान के पास भी नहीं है।

दिवा-स्वप्नों मे यो डूबते-डूबते वह सहसा सोचने लगी कि मनुष्य की सबसे बड़ी शत्रु यह स्मृति है। यदि यह सहज सभव होता कि पुराना सब भूल सकें तो कितना अच्छा होता! तब कोई मुश्किल ही नहीं रहती। सब चीजें जैसे आप से आप होती रहती—जैसे बच्चे हर चीज जल्दी भूल जाते हैं। पर स्मृति का यह उनसे चिपटे रहना क्या दुख से जुड़ा हुआ है। पर उत्कट सुख के क्षण भी याद आते हैं! और उत्कट दुख के भी! तो स्मृति उत्कटता से जुड़ी हुई है।

कोई यंत्र यदि ऐसा बनाया जा सकता कि जिसमे हमारी आँख-कान-नाक-जिह्वा और त्वचा को सतत ऐसी निदारुण, अकरुण सवेदनाओं से नित्य-प्रभावित रखा जा सकता तो शायद मनुष्य स्मृति के राक्षस से बच जाता! पर यह कैसे हो सकता है? कभी तो मनुष्य की काया विश्राम चाहेगी! और जब वे विश्राम के क्षण आयेंगे—वही सब स्मृतियों की भुतही मालिका उसे तग करती रहेगी। एक क्षण भी तो मन चुप नही रह सकता।

हाँ, नीद ही एक ऐसा समय है जब आदमी चाहे तो कुछ देर अपने को भुलावे मे रख सकता है, पर कितना क्षणिक है यह भुलावा ?

तो क्या केवल मृत्यु ही मनुष्य के इस चिरंतन-प्रश्न का समाधान दे सकती है ? केवल मृत्यु—क्या वह अनंत निद्रा है। या अगली यात्रा के लिए एक मंजिल, एक विश्राम का बहाना। क्या पुनः जन्म की संभावना है ? है तो, स्मृति फिर मनुष्य को यो तग करती हुई उसका पीछा करती ही रहेगी। क्या यही रास्ता है ? या रास्ते का अत ? हम सब निरंतर दो स्थितियो के बीच मे हैं—एक प्रकाश मिट रहा है, दूसरा उठ रहा है—दोनो के बीच...द्वाभा...

आभा इस तरह उधेड़ बुन मे लगी हुई थी जब उसकी सहेली मीना आई और उसने बताया कि एक परम-योगी उसके साथ आये हैं जो मन के भीतर का सारा हाल बता देते हैं।

'अच्छा ? देखें, उन्हे ले आओ !'

मीनाक्षी के साथ एक दुबला-पतला कौपीन पहने आदमी अंदर आया और उसके व्यक्तित्व मे कोई विशेषता नहीं थी, सिवा इस बात के कि उसकी बड़ी-बडी आँखे बहुत ही मर्म-भेदिनी थीं। वह अदर आया और चुपचाप बैठ गया। वह बहुत कम बोलता था। पर उसके बोलने मे एक प्रकार का सीधापन और आघात करने की सामर्थ्य थी।

उसने थोड़ी देर आभा का हाथ देखा। कुछ नही बोला।

फिर उसने जैसे कुछ याद कर रहा हो यो रुक-रुककर बोलना शुरू किया—'आपकी कुछ बातें तो आपकी मित्र मीना ने बतला दी हैं। पर मैं कुछ और बताऊँगा—जो आप नहीं जानती ! पर वह सच है।'

फिर वह कुछ भूमिका सी बाँधने लगा—'देखिये देवी जी ! आप बहुत सोचती हैं कि सोचने से छुटकारा पा सकें। पर सोचना छुटता नहीं। क्योकि सोचना है क्या ? हमारी एक आदत है—शब्दों के आईने मे हम अपने आपको देखना भर चाहते हैं—उलटना-पलटना नही। हम सोच कर जैसे अपने आपे से छुट्टी पा लेते हैं। बहुत कुछ और गहरे मे, आपके और मेरे व्यक्तित्व में है, जो सोचने मात्र से नही जाना जा सकता !'

आभा चुपचाप सुनती गई। उसे उसकी बातें अच्छी लग रही थी।

फिर वह सहसा ऐसा कुछ बोला जिससे आभा के मन के घाव पर ठेस पहुँचाई हो—'सुनिये! आपके जीवन में कुछ है जिसे आप दुख कहती हैं। पर वह है निरा रिक्त! एक शून्य की सी अवस्था—जिसमे कुछ बना नहीं है। न बन रहा है। जो बननेवाला था, वह मिट चुका। और इन दो गत और आगत की पहाड़ियों के बीच में आपका जीवन एक घाटी की तरह से है। वहाँ कभी बादलो की छाँह भागती है, कभी धूप में खिलखिलाते पहाड़ी झरने दिखाई देते हैं, कुहासे के अंबार हैं और उनमे से सुदूर अज्ञात देशों को जानेवाली सर्पिल पगडंडियाँ हैं।'

मीना ने बीच में टोका—"कुछ इनके पूर्वजन्म की बात बताओ न?"

योगी चुप हो गया। फिर जैसे दूर के अंधकार को भेद रहा हो इस तरह से बोला—"देवी! तुम्हारी मुक्ति पुरुष मे नहीं है। तुम संसार की इस बाढ़ भरी नदी मे किनारे के लिए तरसनेवाली नाव की तरह से हो। पर जिस तिनके पर तुमने भरोसा किया, वह डूबते का सहारा नहीं निकला। एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा—तुम्हारे जीवन मे पुरुष आये और तुम्हे धोखा देते चले गये। कोई भूल गये। किसी ने जान बूझकर तुम्हे भुलावे मे रखा, किसी ने सोचा कि कुछ दिनो के लिए दूर रहना ही भूल जाना है। यह सब गलत बातें थीं। पुरुष में नही है नारी का मोक्ष! शास्त्र चाहे जो कहते आये हों—जहाँ इतना भर सोचा जाता है शरीर अपना बदला लेता है। मनुष्य का मन निरंतर खोखली, मध्यम स्थिति में, मँझधार मे रहता है!"

अब आभा से न रहा गया। और उसने पूछा—"तो क्या करना होगा?"

वह फिर धीमे धीमे प्रत्येक शब्द पर जोर देता हुआ बोला—"करना समूचे, अनबँटे व्यक्तित्व मे से जागना चाहिये। जो सिर्फ सोचते हैं—चलो स्त्रियों की दशा बुरी है, उनका उद्धार करें। वे केवल पत्थर, ईंट, चूना-गारे की इमारतें बनाकर मर जाते हैं। जो सोचते हैं कि सब स्त्रियों का उद्धार असंभव है, वे एक वेश्या से विवाह करके उसे सुप्रतिष्ठित समाज की सीढी पर चढ़ाकर,

और नयी वेश्याओं के लिए मार्ग प्रशस्त करते हैं। जो समीक्षा को केवल भावुकता से ग्रहण करते हैं वे 'नारी के प्रति!' कविता लिखकर अनिंद्य, अप्सरा-लोक के उपमानों के शब्द बिखेरते हैं, और जीवन भर एकाकी रहते हैं। आप को चाहिये कि आप यह जगह और जिंदगी का यह तरीका एकदम छोड़ दें। शायद राह अपने आप निकल आये।"

इतना कहकर वह जो विचित्र भविष्य वेत्ता आया था वह आभा को और उलझन में डालकर चला गया। उसने रुपया पैसा कुछ नहीं लिया। सिर्फ यह कहता गया कि—"अभी जीवन बड़ा है। और आपसे कई बार फिर भेंट होगी!"

आभा को लगा जैसे उसके मन के अँधेरे कमरे में किसी ने एक मिट्टी का दीपक जला दिया।

: ११ :

युद्ध में जाकर श्री ने अपना नाम विजय लिखवाया था। पर डीमाब हो कर विजय फिर से घर लौटा। फौजी कमांडर ने कहा—इस लोगों ने तीन वर्ष तक बड़ी बहादुरी और दिलेरी से युद्ध में सहयोग दिया। हम आपके अहसान कभी नहीं भूलेंगे। परन्तु अब हम आपको रखने से विवश हैं। जो कुछ रुपये दुनिया भर के कर्जे आदि जाकर बचे थे, वे विजय की हथेली पर रखे गये—तिरेपन रुपये, पन्द्रह आने।

उसने गिन गिन कर वे नोट लिए—हाँ, पाँच पाँच के दस और रुपये रुपये के तीन नोट तथा यह रेजगारी। इस पूंजी से जीवन की फिर नए सिरे से शुरुआत करनी होगी। टिकिट पहिले से ही खरीद लिया गया था। ठसाठस भरे तीसरे दर्जे में विजय भी किसी तरह धर दिया गया है, स-सामान।

गत तीन वर्षों में वह दो बार घर लौटा है। परन्तु पहिले अपने गाँव लौटने से उसके मन में जो चाव और उछाह रहता था, आज वह शून्यवत हो गया है। वह जानता है कि यौरोपीय महायुद्ध की विजय-दुंदुभी कभी की बज चुकी—नागासाकी और हिरोशेमा पर पड़े अणु-बम की गूँज, धुर-सबेरे की वह तुरही, भारत की इस उसी पुरानी गति से चलनेवाली खड़-खड़-खड़-खड़ रेल-गाड़ी की ध्वनि में मिट गई।

उसे याद आने लगे, एक एक कर वे पोस्टर, जिनमें हर जवान विजय को, मैट्रिक-पास विजय को भी यह आशाएँ दिलाई गई थीं कि वह नया हुनर सीखेगा, उसकी ज़िदगी सुधर जाएगी, उसके देश को हिफ़ाजत के साथ साथ उसके अपने कुनबे के भी सपने जुड़े थे। परन्तु आज वह सब ठुकराई हुई बालू है। उसमें कोई कण चमकीला नहीं। आज तो हथेली मे पाँच पाँच के छः नोटो मे एक कम और दिल्ली तक का टिकट जैसा पास है। वर्दी उतर चुकी है। उसका मित्र रायल इडियन नेवी का सिगनेलर था उसका कोड नबर अब जैसे चुक गया था। वह फिर से एक हिन्दुस्तानी है, एक गुलाम। उसे याद आया फ़ौजी कमाडर ने कहा था—इन लोगों ने तीन वर्ष तक बड़ी बहादरी और... तिरेपन रुपये मे क्या हो सकता है? उसका जी होता था कि रुपए रुपए के बावन नोट लेकर उनके वह ताश बनाए और जिदगी का जूआ खेले, फ्लाश, ब्रिज विथ स्टेक्स। मगर इस नए ताश के जोड़े मे प्रत्येक पत्ते पर जहाँ बादशाह ही बादशाह की मुहर है—उसे धीरे धीरे अपने ही दर्शन होने लगे, गुलाम ही गुलाम नजर आने लगे। पहिले जमाने में हर राजा के दरबार मे विदूषक होते थे, विट-चेट, कोर्ट-फूल्स। आज राजाओ का दरबारी युग बीत गया, विदूषकत्व सर्वत्र है। दुनिया जैसे कुत्सित व्यंग्य से उस पर हंस रही थी क्यों, तुम थे न रंगरूट सिपाही, हवलदार, फौजदार, कैप्टन, लैफटेंनेट, कर्नल? कुछ नहीं, मात्र विजय शर्मा, पता वही आगरे की या मुजफ्फरपुर की गली। कीमत तिरेपन रुपए, पंद्रह आने...

इतना तो उसका एक महीने का सिगरेट और शराब का बिल हो जाता था। नेवीवाले छोकड़ों के आस-पास का हिन्द महासागर, पासिफ़िक, अतलांतक, अरब समुद्र—जैसे सभी एक से हो उठते, उन तरगों का नीलम विस्तार लाल-लाल हो उठता। शराब जैसे आँखों को रग कर उसके बाहर छलककर जमीन आसमान को रग देती। सिंगापुर, कोलबो, कराची...सब गड्ड मड्ड हो उठते। अगरेज़ टामी अपनी छड़ी डेक पर पीट पीट कर भद्दी काँपती आवाज़ में गाते—'माई लव इज़ लाइक ए रेड रेड रोज...।'

मगर वे सब मजे आज कहाँ हैं? इससे तो अच्छा होता कि शत्रु की

बमबाजी का निशाना हो गए होते। समुद्र ही लील गया होता इस कप्तान विजय को जो कि आज इतने बड़े युद्ध में—जिसमें इक्कीस या छत्तीस राष्ट्रों ने फ़ाशिस्टों पर अभूतपूर्व विजय प्राप्त की—पराजित होकर लौटा है। विहतमान, पौरुषहीन, क्लीव, जैसे उसका कोई सहारा न बचा हो। आज दुनिया की निगाह में वह वैसा ही बेकार है, बे-पढ़ालिखा, उतना ही मूर्ख और मुहताज।

उसके मित्र ने फ़ौज में रहकर क्या सीखा? सिगनेलिंग? उसका यहाँ क्या उपयोग? निशानेबाजी? वह भी यहाँ बेनिशान है। बुरी आदतें? जो कि उसके साथ अवश्य हैं। विजय को बीच बीच में नींद की झपकी आती है और वह स्वप्न मालिका बुनने लगता है वे अदन में देखी हुई वेश्याओं की सी छोकरियाँ, कितनी उद्धत और आमन्त्रणभरी, और वे अलैक्जैंड्रा की धुली-सी साफ़ चौड़ीं चौड़ी सड़कें, और रंगून के फूलों के बाजार। कि तंद्रा को तोड़ता हुआ एक देहाती, जो कि गंगा-स्नान जा रहा था, उसने चिलम से तमाखू का एक जोर का कश लिया और खासता रहा, खासता रहा। वहीं, ट्रेन में उसने फट से थूक दिया। एक आगन्तुक अन्दर आने के लिये गिड़गिड़ा रहा था। अन्दर बैठा फौजी अपने कीलदार बूट खिड़की में दिखाए उसके आने का प्रतिरोध सक्रिय रूप से व्यक्त कर रहा था। उफ्। गर्मी बेहद थी—और कई स्टेशनों पर पानी भी नहीं मिल रहा था।

विजय आगे की बातें सोचने लगा। घर जाकर आठ दस आश्रितों का पेट पालना है। किस भरोसे? वह मामूली डिमाबृड (छुट्टी पाया हुआ) सैनिक है, वह अन्धाधुन्ध फौज का नेताई सिपाही भी तो नहीं है कि जेल से लौटा, खद्दर-टोपी सिर पर रख ली, अहिंसा को शब्द रूप में अपना लिया, और प्रांतीय सरकारों में उसके लिए स्थान सुरक्षित..।

वह एक निम्न-मध्य-वर्ग का मामूली, महज, सिपाही था; अब एक जवान आदमी है। बस। क्या होगा उससे? या उसका? नौकरी के लिये दरवाजे पर कोई खड़ा करेगा नहीं। लौटे हुए सिपाहियों से सभी सन्देह करते हैं, नफ़रत करते हैं।

चारों ओर के अविश्वास के वातावरण में उसका मन कठोर हो आया।

वह जैसे समझने लगा कि उसका जीवन व्यर्थ है, कि वह निरुद्देश्य कितने दिन और जी सकेगा ? वह जब घर पहुँचेगा और बच्चे उसे चारों ओर से घेरेंगे और कहेंगे अब की क्या नई चीज लाए मामा जी, काका जी, दादा जी ? ह: ! ह: ! तब वह क्या उन्हे डीमाब का सार्टिफिकेट दिखाएगा !

नौकरी मिल मे उसे मिल नही सकती। मिल-मालिक बड़े कांग्रेस भक्त हैं, परम गांधी-भक्त । अगर वे खुद वार-कान्ट्रैक्ट लेते हैं, तो वह उनकी मजबूरी थी—उसका प्रायश्चित उन्होंने अमुक-अमुक राष्ट्रीय फण्ड मे इतने लाख दान देकर कर लिया है। वे एक भूतपूर्व सैनिक को कभी अपनी मिल मे नहीं रखेंगे। यह तो प्रछन्न रूप से युद्ध-सहायता जो हुई ।

फिर, फिर उसे किसी दफ्तर मे शायद नौकरी मिल जाए ? पर इसका उसे अनुभव कहाँ है ? और वहाँ भी तो सहारा चाहिए। व्यक्तिगत शिफारिस का सब जगह दौरदौरा है।

यह बेचारे सेवा-निवृत, मौत के मेंह से बाल-बाल बच कर आए तो भी, उसी प्रकार हैं जैसे तीसरे दर्जे मे होती हैं 'काबिल तवज्जोह इत्तला' । यह विजय अन्ततः किसकी हुई है ? साधारण जन की नहीं—युद्ध की बलि वह अवश्य थी। हविष्य उसका नहीं, हविष्य देवताओं का है। बेचारे साधारण जन का काम, केवल है, कहे—स्वाहा, स्वाहा, इद न मम ।

विजय का मन करता है, ऐसे जीने से मरना क्या बुरा है ? रेलवे के पहिये भारी हैं—सिर्फ एक ही तो लमहे की बात है। फिर यह बेकारी की चेतना रहेगी भी कहाँ ?

परन्तु आत्मघात करने के लिए जो दृढ़ता, जो क्षमता चाहिए इस युद्ध में वह खो चुका है। युद्ध ने उसे नैतिक दृष्टि से खोखला बना दिया है। वह अब किसी से नही डरता और सब-कुछ से डरता है। वाह रे विजय ! दोस्तो का विजय। घरवालो का विजय। अपने राष्ट्र का विजय।

तिरेपन रुपए पन्द्रह आने—रुपए का तीन सेर आटा, रुपए का दो सेर दूध, चार रुपए सेर वेजिटेबल-मिश्रित घी—जीवन-सत्व भी निस्सत्व हो गये।

कै दिन चलेंगे ये रुपये ? दो महीनो तक मान लो किसी किसी तरह एक आदमी इनके सहारे चल भी ले। फिर तीसरे माह ?

नौकरियाँ ऐसी बेलो पर लटकती नहीं कि कुम्हड़ों की तरह तोड़ ली जायें। उसकी व्यवस्था कौन करेगा ? जब यह गरज गरज कर कहा जा रहा था कि हिन्दुस्तानियों, आओ, यह युद्ध तुम्हारा ही है। इसमे हाथ बॅटाओ। 'सिपाही का एक दिन' फिल्म रंगरूट, भर्ती मे दिखाई जाती थी जिसमे बताया था कि कुछ सिक्खों को सुदूर पूर्व या पश्चिम कहीं छावनी मे गुलाब जामुन भी मिल रहे हैं।

कहाँ हैं वे रसगुल्ले ? अभी तो रसगुल्लो के बजाय कुछ और ही चीज दिखाई देती है। तिरेपन रुपए पन्द्रह आने। एक रुपया चार आने तो ट्रेन मे केवल खाने की एक थाली के ही ले गया। बचे बावन रुपये ग्यारह आने। कन्ट्रोल का सस्ता ऊनी कपड़ा लो, तो सिलाई मिलाकर इन दामो मे शायद एक भले आदमी का ऊनी सूट बने। और वह फिर खाए क्या ?

दूसरे महायुद्ध ने भारत की नैतिक रीढ को तोड़कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया।

विजय का मन बड़ी कटुता से भर आया। खाकी खाकी खाकी—रंग बहुत अच्छा है, पर उसमे से हाथ आया क्या ? खाक। मुर्दादिल भी क्या खाक जिया करते हैं ?

जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है। जिन्दादिली भी एक आर्थिक सुविधा से पैदा होने वाली एक खास किस्म की स्नौबरी (एक झूठा लोक-दिखावा) है। दिल तभी तक जिन्दादिल है, जब तक उस पर जेब गर्म हो। और वह गर्म की जाने पर आप चाहे किसी को लड़ा लीजिये। पहले जमाने मे तीतर बटेर लड़ाए जाते थे। आजकल देश देश के जवान .।

हम इसी मे अपनी विजय समझते हैं कि 'अ' जमात ने 'ब' जमात पर इस तरह वार किया, यों उसे हरा दिया, इत्यादि-इत्यादि।

परन्तु आज वार करने वाला खुद अपने हाथों अपनी पराजय कबूल

कर रहा है। वह अपनी कब्र खुद खोद रहा है। विजय ! तुम ऐसी पराजय को लेकर क्या करोगे ?

परतु कुछ-न-कुछ उसे काम तो चाहिये ही था। और तब उसने सरकारी नौकरी कर ली थी—अन्न विभाग मे। और तब उसने लड़ने से ज्यादह 'डिग्रिफाईड' पेशा अख्तार किया—लड़कियों को फँसाने का। और उसमें कुछ हद तक वह सफल भी हुआ। यद्यपि आभा को उसने छोड़ दिया। और किसी अन्य स्त्री से उसने विवाह का वचन दिया और उसे तोड़ दिया ! तीसरी के प्रति उसने इसलिए प्रेम दिखाया कि उसकी मारफत उसे ऊँची नौकरी मिल सकती थी। और पाँचवी श्यामा तो मर ही गई। इस सारी नारी-लोक-यात्रा मे उसे बार बार दार्जिलिंग मे मिली हुई चीनी लड़की का स्मरण हो आता था। और उसके दुखपर वह कठोर हृदय, निर्घृण, निर्मम भी एक बार कुछ पिघल सका था। कई दिनों से उससे पत्र-व्यवहार छूट सा गया था। और उसने निश्चय किया कि वहीं जाकर उससे मिला जाय। और गर्मियों मे दो माह की छुट्टी लेकर वह दार्जिलिंग पहुँचा।

: १३ :

आभा इस तरह से स्त्रियो के दुखी-जीवन की चिता मे घुली जाती थी। और उसे कोई मार्ग नही मिल रहा था तब एक दिन पढ़ते-पढते उसका ध्यान दो बहुत ही मार्मिक स्त्रियो की ओर गया और उनके बारे मे वह बार-बार पढ़कर भी अघा न पाई।

पहली कहानी मातंग जातक से दृष्टि मागलिका की कहानी थी—

दृष्टि-मांगलिका

आज तो छूत-अछूत की बात इतनी नहीं की जाती। यद्यपि 'हरिजन' या 'दलित' शब्दों पर राजनीतिक रग होता है। पर तब जब कि ऋषि मुनि पूजे जाते थे, वर्ण-व्यवस्था सुरक्षित थी तब की कहानी सुनाता हूँ ऐसे एक ऋषि की, जो थे असल में चाडाल।

वाराणसी नगरी के बाहर था चांडाल-ग्राम। मातग का वहीं जन्म हुआ !

यह मातंग धीरे धीरे बढ़कर युवा हुआ। एक दिन वह युवक मातग जब रास्ते से जा रहा था उसे एक सुन्दरी युवती राह मे दिखाई दी। वाराणसी के किसी धनिक परिवार मे से वह अवश्य होनी चाहिये, ऐसा उसे उसके आसपास के दास-दासियो से विश्वास हो गया। शिबिका मे जानेवाली यह सुन्दरी ठिठकी। उसने अपने परिवार के भृत्यों से पूछा—यह कौन है जो इस प्रकार टकटकी लगाये राह की एक ओर खड़ा रह गया है?

नौकरों ने उत्तर दिया—कोई चाडाल है देवि।

दूसरे वृद्ध नौकर ने कहा—'अब तो लौट चलना होगा। पर्व के दिन हम दान पुण्य को निकले और बीच राह मे शिबिका रोक, उस पर भूखी आँखें गड़ाये खड़ा रहा ये चाडाल। यह तो अपशुकन हो गया।

रमणी ने कहा—'हाँ, हुआ तो है। चलो लौट चलें।'

शिबिका वापिस चली गयी। पर्व का दिन था और आशा लगाये कई भिखारी गगाघाट पर जमा थे। विशेष रूप से नारी-श्रेष्ठी की दानशीला कन्या दृष्टि-मागलिका से तो उन्हें बहुत आशा थी, द्रव्यार्जन की। उसके इस प्रकार लौट जाने का कारण खोजते-खोजते वे जान गये कि चाडाल मातग ही इसका मूल है। फिर तो सब भिखारियों ने उसकी खासी मरम्मत की। लाठी, पत्थर, घूमे, लात वगैरह सब सहज-प्राप्त साधनों से उसे इतना पीटा कि वह बेहोश हो गया। वह मातंग बेचारा इसी तरह देर तक बेहोश पड़ा रहा। धीरे धीरे जब वह होश मे आया, तो समझ गया कि मेरी यह सब दुर्गति हुई है उसी श्रेष्ठी की कन्या की वजह से। वह उस श्रेष्ठी के घर गया और लड़की के बाप के दरवाजे पर अपनी देह बिछाकर उसने जैसे अन्न-सत्याग्रह शुरू कर दिया। "'आत्महत्या क्यो कर रहे हो?" किसी ने पूछा। उत्तर मिला—"आत्महत्या नही, मै तो दृष्टिमागलिका को यहाँ से लेकर ही जाऊगा। वर्ना यही मेरी आखिरी सास गिनी जायगी।"

सात दिन और रात वह चांडाल मातग अपने उत्कट प्रेम की परीक्षा देता-सा वहाँ श्रेष्ठी के घर की सीढ़ियों पर पड़ा रहा। आखिर श्रेष्ठी घबड़ा गए। निरुपाय, वे अपनी कन्या दृष्टिमागलिका को ले आये और उसे उनके हाथ सौंप

दिया। मातग ने अपना उपवास छोड़ा और वह दृष्टिमागलिका को लेकर विजया बन उसे चाडाल-ग्राम में ले गया।

उसे इस लड़की से पूरा बदला लेना था। चाडाल-ग्राम मे ले जाकर उसने दृष्टिमागलिका को छोड़ दिया? मागलिका उसके साथ पत्नी की तरह रहने के लिये तैयार थी। मगर मातग उसे वहीं छोड़ कर घोर जंगल मे चले गये, तपस्या करने।

सात दिन बाद मातग लोटा और मागलिका से कहा—'तू इस प्रकार की घोषणा कर कि मेरा पति मातग चाडाल न होकर तपस्वी महाब्राह्मण है और वह पूरनमासी के दिन चन्द्रलोक से उतर कर आयेगा।' बेचारी मागलिका ने मातग के कहने के अनुसार ऐलान करा दिया।

पूरनमासी की रात। चाडाल-ग्राम मे उसकी झोपड़ी के सामने कई हजारों की तादाद मे लोग जुट गये। मध्यरात्रि के नीरव प्रहार मे चन्द्रमडल से नीचे मातंग ऋषि उतरे और सीधे अपनी झोपड़ी मे घुसकर उन्होंने दृष्टिमागलिका की नाभि को अपने अंगूठे से स्पर्श किया। अर्थ इतना ही है कि उन्होंने कुछ चमत्कार करके दिखलाया जिस पर सब लोगों की श्रद्धा जम गयी।

वहाँ जमे हुए ब्रह्मभक्तों ने यह सब चमत्कार देखा और वे मागलिका को लेकर वाराणसी गये। नगरी के मध्य भाग मे बड़ा भारी मंडप बनाया और नौ माह नौ दिन उसकी पूजा की। उसे यज्ञविधि से एक पुत्र हुआ जिसका नाम हुआ माडव्य, चूंकि वह मडप में जन्मा था। उसके लिये लोगों ने एक विशाल प्रासाद बना दिया, माता पुत्र को प्रासाद मे रख कर लोग उन्हें पूजने लगे। बचपन से ही माडव्य को पढ़ाने के लिये बड़े बड़े वैदिक ऋषि खुद ही वहाँ आते। वह तीनों ही वेद सीख गया और ब्राह्मणों को बहुत दान-दक्षिणा देकर सहायता करने लगा! एक दिन मातग ऋषि उसके दरवाजे पर (उसी का पिता) भिखारी बना आया, तब माडव्य पूछता है—"तू चिंथियाँ शरीर पर पहने पिशाच की तरह यहाँ क्यों खड़ा है?"

मातंग—"तेरे घर अन्न बहुत है, कुछ जूठन मुझे मिल जाय, इस आशा से खड़ा हूँ।"

मांडव्य—"पर यह अन्न तो है ब्राह्मणों के लिये, तेरे जैसे नीचों के लिये नहीं..."

बात यह थी कि माडव्य लड़का था, उसने अपने पिता को पहिचाना नहीं। दृष्टिमागलिका के वाराणसी वापिस आते ही मातग फिर कहीं भटकता फिर रहा था। मातंग और माडव्य की बहुत बहस होती रही, जूठन और ब्राह्मण-श्रेष्ठत्व और नीचत्व पर। आखिर माडव्य ने अपने द्वारपाल नौकर को बुलाया और मातग को धकिया कर निकलवा दिया।

मातग ने शाप दिया। माडव्य की जबान को लकवा मार गया। और भी जो ब्राह्मण उसके साथ थे, वे भी मुंह टेढे बनकर जमीन पर छटपटाने लगे। एक दरिद्र तापस के शब्दो का यह प्रभाव देखकर दृष्टिमागलिका भी घबड़ा गयी। उसने सोच लिया हो न हो यह वही चाडाल-प्रेमिक पति, मातग होगा, यह सोचकर वह तपस्वी भिक्षुक की खोज मे चली। जगल छान डाले, कई रास्ते छान डाले। आखिर वह मिला, एक दीवार के पास भीख माग कर लाई हुई जूठी चावल की माड़ वह बैठा पी रहा था। दृष्टिमागलिका ने पहचान लिया। उसे समझाया, प्रार्थना की कि लोग अपने बच्चे पर ऐसे नाराज़ नहीं हुआ करते उसे क्षमा कर दो। अपनी जूठी माड का कुछ हिस्सा उन्होंने उसे दिया और कहा—"जाओ यह माड बच्चे के और दूसरे ब्राह्मणों के मुंह मे डाल दो। वे अच्छे हो जायेंगे" वैसा ही किया गया, और वैसा ही हुआ।

वाराणसी में यह खबर फैल गयी कि चाडाल की जूठन से ब्राह्मण अच्छे हो गये, उन ब्राह्मणों के शर्म का ठिकाना न रहा, वह मारे शर्म के वाराणसी छोड़कर, मोक्ष चले गये।

दृष्टिमागलिका की कहानी पढ़कर आभा फिर सूने मे बहुत देर तक देखती रही। यह है जाति-व्यवस्था की मिथ्या खोखल! इस चट्टान के नीचे मनुष्य के निर्मल, दिव्य, पावन हृदय की स्नेह-धारा कैसी, बह रही है! सब लोग चट्टान से

डरकर वापिस चले आते हैं। या चट्टान से टकराकर चूर-चूर हो जाते हैं! पर पानी बराबर बहते रहता है।

यही माडव्य ऋषि शायद बाद मे अणिमाडव्य बना।

आज हम सब एक दर्द सा अपने दिल मे सालते हुए चल रहे हैं। हम सब अणिमाडव्य ही तो हैं। हमने अपना सलीब अपने कधो पर उठा लिया है और तिल-तिलकर हमे सूली दी जा रही है। पर यह क्या निरा आत्मपीड़न है? मैसोकिस्ट समाधान?...

पर शारलोत् उससे भिन्न थे। वह कैसी थी कि उसने हँसकर मृत्यु को झेल लिया। क्या मृत्यु से हमारा बहुत सा जो डर है वह केवल एक 'परवर्जन' नहीं है! जीवन के प्रति चिपटे रहने के मोह की निरी विकृति! उस जिजिवीषा का दूसरा पहलू!

इसीलिए शारलोत् की कहानी उसने दुबारा पढी। उसे पढ़कर न जाने कहीं हृदय के कोने मे प्रसुप्त उसकी पर-पीड़क वृत्ति (सैडिज्म) को हलकासा सतोष शायद मिल जाता था। यह कहानी फ्रासीसी राज्यक्राति के ज़माने की एक वीरागना की सत्यकथा थी :

शारलोत् कोर्दे

शारलोत कोर्दे (१७६८-९३) फ्रान्स की राज्यक्रान्ति के आरम्भ काल की एक ज्वलन्त युवती थी। यह नार्मन लड़की बचपन से ही गिरोंदिन-पार्टी के समता, स्वतन्त्रता के लोकसत्तात्मक उद्देश्य से प्रभावित थी। उसने पार्टी के बड़े बड़े राजनीतिज्ञो से उसने परिचय प्राप्त कर लिया। वे राजनीतिज्ञ उन दिनों केई मे भागकर छिपे हुए थे अपने दिल का हाल किसी को न बताते हुए वह चुपके से पैरिस पहुँची और कुछ दिन वहाँ मैरेट और उसके दोनों साथियो के हाल-चाल का पूरा पता रखने लगी। यह त्रिमूर्ति उसे बड़ी ही देशद्रोहिणी जान पडी, और उन तीनो मे से किसी एक का खात्मा करने की उसने मन ही मन ठान ली। मैरेट उसे सबसे मक्कार जान पड़ा। वह बुखार का बहाना बनाकर कन्वेन्शन मे जाता ही नही था। इस बुखार को मिटाने के लिए वह स्नानगृह मे घंटों बिताता! रोज़ चिट्ठियों में कई लोगों की निन्दा किया करता और कइयो

को पकड़ने के वारंट निकालता। खाना देर से आता, तो शिकारी कुत्ते की भाँति उसके लिए चीखता-झपटता। कस्ताइन और बिरों दो सेनापति उसके अमीर साथी थे।

वह इसी राक्षस के घर गई। मैरेट एक महिला के साथ रहता था। उसने शारलोत् को प्रवेश करने से रोक दिया; परन्तु शारलोत् ने आग्रह किया कि मै तो आज उससे मिलकर ही रहूँगी। उसने कहा कि मैरेट से कुछ महत्वपूर्ण बातो के विषय मे उसे वार्तालाप करना अत्यावश्यक है, क्योंकि मै अभी केई से आ रही हूँ, मैरेट पास ही के एक कमरे मे अपने स्नानागृह मे पानी मे पैर फैलाए पड़ा था। उसके कानों म इस बातचीत की भनक पड़ी। वह वहीं से चिल्लाया—आने दो उस युवती को।

ज्यो ही शारलोत् अन्दर पहुँची, मैरेट ने बहुत उत्कण्ठापूर्वक पूछा, "केई के रौदिस्तो का क्या हाल है?" वह बड़ी सतर्कता से उसके उत्तरों का ग्रहण करता रहा और बुदबुदाता रहा—"वे सब गिलोटीन (सूली) के शिकार होगे।" वह यह शब्द बुदबुदा ही रहा था कि शारलोत् उसकी विवस्त्र देह के करीब जा पहुँची और एक धारदार छुरी उसने मैरेट के सीने मे भोक दी। उस कायर के हृदय से—उसके कोई हृदय हो तो—एक आर्त चीख निकल पड़ी।

उसकी रखेल चीख सुनकर दौड़ी आई, और उसकी चीखो ने एक मजमा वहाँ पर बुला लिया। राक्षस का काम तमाम हो चुका था, रक्तपूर्ण शब्द उसके कण्ठ में ही अटके रहे। शारलोत् खड़ी रही—अचल, दृढ और सन्तुष्ट। उस पर जब मुकदमा चला, तब भी उसकी चर्या ऐसी ही बनी रही थी, और जब गिलोटीन पर उसका शिरच्छेद हुआ, तब भी वह ऐसी ही निर्विकार, तेजस्वी, आश्वस्त और अविकम्प खड़ी थी—जब कि आसपास एक जत्था इकट्ठा हो गया था और जोर जोर से नारे लगा रहा था।

ला-मार्तीन नामक फ्रांसीसी इतिहासकार ने शारलोत् की शिरच्छेद की घटना का इन मर्मभेदी शब्दों मे वर्णन किया है—आसमान निरभ्र हो गया था। बारिश ने उसके वस्त्र भिगो दिये थे और उन त्वचा से चिपटे हुए वस्त्रों से शार-

लोत् की सुघड़ प्रतिमा ऐसी जान पड़ रही थी, मानो कोई सद्यस्नाता हो। उसके हाथ पीठ पीछे बँधे हुए थे; जिनके कारण उसकी गर्दन और सिर तन गया था। स्नायुओं को जबरन कसा हुआ बनाने के कारण उसकी मुद्रा मे एक प्रकार की प्रस्तरप्राय स्थिरता आ गई थी। उसने लाल कमीज पहन रखी थी, जिससे उसका रंग एक अलौकिक आभा से निखर उठा था। रौबस्पीयर डैंएटन, कैमील और अन्य डैस्मौलिनो ने उसकी राह मे—जब कि गिलोटीन की ओर उसे ले जाया जा रहा था, उसे एक नज़र देख-भर लेने के लिए स्थान नियत कर लिए थे, जो अन्य प्रेक्षक यह निश्चित रूप से जानते थे कि शारलोत् का वध होगा, उन्हे उसकी चर्या पर वह करारापन अंकित दीखा कि न जाने आगामी प्रातःकाल क्या कुछ न हो। मानो वह आनेवाले तूफान की सन्देशवाहिनी पुरवैया-जैसी चल रही थी। वह ऐसे जान पड़ती थी, मानो दैवी प्रतिशोध मूर्तिमन्त अवतरित हुआ हो। बीच-बीच में वह अपनी चमकीली दृष्टि इधर-उधर दौड़ाती, जैसे कोई सूचना पकड़ रही हो। इस आशय से किन्हीं तमाशबीनो की आँखों मे वह दृष्टि रुक जाती।

ॲडम लक्स, एक तरुण जर्मन रिपब्लिकन, गिलोटीन के शिकार देश-भक्तों की गाड़ी की राह देखता हुआ सन्त आनोरे के प्रवेश-द्वार पर खड़ा था। फिर उस गाड़ी के साथ-साथ वह वधस्तम्भ तक गया। उसने अपने अन्तस्तल मे भीड़ की चीत्कारो के बीच मे भी वह अनुभूत और अभूतसवेद्य मधुरिमा शिल्पी सी अंकित कर ली। वह दृष्टि, जो इतनी स्निग्ध थी, फिर भी इतनी पैनी। उन आँखो से जो स्पष्ट विद्युत्प्रवाह सा बह रहा था, वह मानो ज्वलन्त महती कल्पनाओं का एक अखण्डित उत्स था। उन आँखों से एक ऐसी आत्मा बोल रही थी, जो 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' थी। उन आँखो की चिगारियो मे पत्थर भी पिघल जाता, फिर ॲडम लक्स का हृदय तो चन्द्रमणि ही था।

शारलोत् के बिना जाने हुए एक जीवन्त उमग भरा अपारभौतिक आकर्षण उसके साथ वधस्थल की ओर खिंचा चला जा रहा था, मानो वह किसी शाश्वत पुनर्मिलन की आशा से शारलोत् की भाँति उसका अनुकरण करने पर तुल पड़ा था। गाड़ी ठहरी। शारलोत् उस मरण-यन्त्र को देखते ही निष्प्रभ

विवर्ण हो गई। परन्तु क्षणेक के लिये, फिर शीघ्र ही उसने अपना सहज रक्तिम वर्ण ग्रहण किया। जल्दी-जल्दी हल्के पैरों से वह सूली की वेदी की सीढ़ियाँ चढ़ गई—अपने लम्बे कुर्ते और बँधी हुई बाजुओ से जितना सम्भव था, उतनी द्रुतता से। उसके गले मे फ्रांस की राज्य क्राति का प्रतीक एक लाल रूमाल बंधा था। उसे जब जल्लाद ने उतार दिया, तो उसके उघड़े उरोजों ने मानो उसकी लज्जा पर बहुत बुरा अपमानाघात-सा किया, यह आघात आने वाले मरण से भी बुरा था।

फिर गिलोटीन की ओर मुखातिब होकर उसने कुल्हाड़ी के नीचे अपना सिर रख दिया, वह भारी धारदार इस्पात की पट्टी नीचे गिरी और शारलोत् का सिर वधस्तम्भ से नीचे लुढ़क गया। वधिको के एक सहकारी लैगोईने वह मुण्ड हाथ मे उठाकर उसके गाल पर थपकी दी। कहा जाता है कि उसके चेहरे पर गहरा गुलाबी रग फैल गया, मानो गौरव और लज्जाभिमान जीवन के उपरान्त भी जीवित रहे हों।

इस तरह मैरेट और शारलोत् कोर्द का अन्त हुआ। खून के मुँह पर इतिहास उसकी प्रशंसा क्या और कैसे करे? मगर वीरता के मुंह पर उस वीर रमणी की इतिहास निन्दा भी क्योंकर करे? ऐसे कृत्य की तारीफ़ करना हमे या तो सद्‌गुणों की बुराई या हत्या की अच्छाई करने पर बाध्य करेगी—उस चित्र-कार की भाँति, जिसने सम्मिश्र भावनाओ का अंकन कठिन जान पड़ने पर चित्र-गत आकृति के मॅह पर इसलिए पर्दा उढ़ा दिया कि हमे भी इस रहस्य को ज्यों का त्यो रहने देना चाहिए। कुछ कृत्य ऐसे होते हैं, जिनकी परख मानवी निर्णय शक्ति से परे की चीज़ है। कुछ मानवी कृतियाँ कमजोरियाँ और सामर्थ्य, सदुद्देश्य और हिसा, अनृत और सचाई, हत्या और शहादत के ऐसे विचित्र मिश्रण होती हैं, कि इतिहासकार की समझ मे नही आता, वह उन्हें पाप कहे या पुण्य। यह अमर निष्ठा जो शारलोत् ने पाई थी, हमे प्रशस्ति और आतंक से भर देती है। नीतिमत्ता के लिए यह एक सन्देहास्पद पहेली है कि वह निश्चय-पूर्वक उसे अनैतिक कहे? 'यदि किसी शब्द से हमे इस अपने देश की दिव्य

स्वातन्त्र्यदात्री और एक अन्यायी की मर्दिनी को पुकारना हो, तो हमे एक ऐसा शब्द गढ़ना पडेगा जो कि "एंजेल आफ एसेसिनेशन" का समानार्थी हो।

कुछ दिनो पश्चात् ऍडम लक्स ने शारलोत् कोर्दे की ओर से एक पुस्तक प्रकाशित की, जिसमे उसने सच्चा अपराधी अपने आपको बतलाया। उसे पकड़कर अवेई भेज दिया गया, जहाँ कारागार-प्रवेश के समय वह बोला,—तो मै उसके लिये मरूँगा ? अन्त मे उसे भी जान खोनी पड़ी। उस बलिवेदी को उसने सलाम किया, जिसे उसकी आदर्श-देवी शारलोत् ने अपने लहू से धोया था। कविवर आद्रे शेनीयर ने शारलोत् की गाथा का गाना किया, जिसके लिए उसे भी सब महान आत्माओं की भाँति गिलोटिन चूमना पडा। वैरा निओद ने उसके सम्बन्ध मे लिखा है—"उसने हमारा ध्वंस किया, परन्तु उसी ने हमे कैसे मरना चाहिए, यह भी सिखलाया।" बाद्री ने इसी ऐतिहासिक घटना का एक चित्र भी बनाया है।

पर आभा ने ये दोनो कहानियाँ पढ़कर किताब बद कर दी। और अपने होस्टल के बरामदे मे एक गमले मे लगी बेल की ओर वह टकटकी लगाये देखने लगी। उसी से दूर पर बाग मे एक बडे से वृक्ष के सहारे इठलाती एक लता हवा मे अपने कुंतल उड़ाती, फूलो की हँसी हँसती खड़ी थी।

आभा ने कुछ लिखने का यत्न किया। जो लकीरें बनीं वे यो थी :—

"गमले की बेल

बड़े बड़े लोगो के सुसज्जित बगलों मे ड्राइङ्गरूम और बाहर बालकनी में कई सुन्दर, सदा हरी रहने वाली, कोमल पल्लवों वाली बेलें रखी जाती हैं, पीतल की, लकड़ी की, मिट्टी की कुण्डियों मे या गमलों मे। इनका विकास एक सीमा तक ही होता है, उससे ऊपर नहीं। उन्हें बाहर की मुक्त-वायु से ठठोली करना मना है। वातायन के नीचे, महराबो के आस पास, मैंटलपीस पर उनकी जिन्दगी एक सुनिश्चित काट पर चलती रहती है। वे एक प्रकार से असूर्यम्पश्या ही है।

एक दिन ऐसी एक गमले की बेल से बागीचे की पेड़ के सुदृढ़ तने

से लिपटी वल्लरी-बहिन मिली; जिसके बदन पर कई फूल खिलाखिला रहे थे और जिसकी जड़ो मे एक जाली सी बन गई थी। खुली हवा वाली लता ने कहा, "बहन, तुम्हे यह घर की चहारदीवारी मे यो कुण्ठित जीवन बिताना पसन्द है?"

"यह पसन्द का सवाल नहीं, बहन, यह तो विवशता है"

"क्या तुम मुक्त वायु, मुक्त-प्रकाश पसन्द नही करती?"

"कौन पसन्द नहीं करेगा? परन्तु इस घर मे भी तो मै कितनो की सेवा करती हूँ, कितने लोगो को सुख देती हूँ, कई अतिथियों के नयनो को सन्तोष मिलता है।"

"परन्तु इससे तुम सन्तुष्ट हो?"

"नहीं तो, मगर फिर भी मै एकदम निरुपयोगी तो नहीं हूँ?"

"बहन, आज की दुनिया मे धरती से सम्पर्क चाहिये, सीधा और सुदृढ़। नही तो विकास रुक जायगा। प्रगति होगी ही नही।"

"हॉ, कुछ मिट्टी तो मेरे भी पैरों मे पड़ी है, यद्यपि वह छनी हुई और खादसनी है।"

"और ये तुम्हारे फूल और पत्ते यो हमेशा हरे से कैसे रहते है? ये कभी सूखते नहीं, गिरते नहीं?"

"माली उन्हे पहिले ही हटा देता है।"

"तुम्हारा सब कुछ अजीब है, वल्लरी, सब कुछ अप्राकृतिक।"

"वही अप्राकृतिकता अब मेरी प्रकृति बन गई है, मैं क्या करूँ?"

"तो क्या तुम्हे पानी की भी जरूरत नहीं रहती, तुम यो ही फूली-फूली फिरती हो?"

"नहीं नहीं, बहन गमले की बेल को भी पानी लगता है—सहानुभूति का जल, कुछ थोड़ी मात्रा मे क्यों न हो, उसे भी चाहिये। नही तो वह सूख जायगी......"

'सहानुभूति का जल तो मुझे भी चाहिये। बिना 'जीवन' के कौन-सी बेल बढ़ी है?'

इतने मे बंगले वाले ने मीरा का पद बजाना शुरू किया "अँसुवन जल सींच-सींच प्रेम-बेल बोई। अब तो बात फैल गई, जाने सब कोई।"...

आभा से आगे लिखा न गया। लिखना उससे बनता नहीं। वह यहाँ-वहाँ सब ओर अपने आपको ही प्रतिभासित पाती है। उसे कई बार लोगो ने कहा—कुछ सोद्देश्य लिखो। कुछ ऐसा जो समाज को उद्बुद्ध कर सके। पर वह उससे नही बनता। वह घूम-फिरकर अपने ही मन की बात लिखती है। शायद सारी सृष्टि और रचना का अर्थ यही है। पुराणो के रूपक मे स्रष्टा इसीलिए एक वृंत वाले पंकज पर बैठा है। चारो दिशाओं मे वह देखता है। पर नाभि-कमल से वह निकला है, और अत्यन्त कोमल पुष्प पर वह सतुलित बैठा है यह बात वह भूल नहीं सकता।

आभा का मन अपने प्रति निष्ठा और लोक-निष्ठा की द्विविध जिम्मेदारियो में खण्डित हो उठा। जैसे दो दिशाओ के परस्पर विरुद्ध प्रकाश हो: 'स्व' और 'सर्व'। पर दोनो क्या एक ही के प्रत्यावर्तन नहीं हैं? आभा द्वाभा हो उठी। कौन सा लोक मगल है जो आत्मकल्याण नही तो आत्मानन्द का कारण नहीं है; और कौन सी आत्म-सिद्धि है जो सच्चे लोक-सन्तोष की मूल प्रेरणा नहीं? हेतुओ की बहस बेकार है; क्या फल कर्म का निर्णायक नहीं?...

आभा की यह विचारों की कड़ी सहसा जैसे रुक गयी। दरवाजे पर कोई बुला रहा था।

●

—१५—

शी-चुन्

दार्जिलिंग आकर के सबसे पहले श्री ने पीकिंड होटल की शरण ली। और शी-चुन् का पता लगाया। परन्तु वहाँ आकर उसे और एक समस्या का सामना करना पड़ा।

शी-चुन् ने पहले जब श्री का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया था तो एक दयनीया, वंचिता के नाते। पर उसे पता था कि कलकत्ते मे और पश्चिम बगाल मे मे कई चीनी व्यावसायिक वेश्याओ ने भी अपनी कमाई का अश चीन से जापान की होनेवाली लड़ाई मे चीन के स्वातन्त्र्य-संग्राम के लिए भेजा था। गोआ की नर्तिकाओ के बारे मे भी उसने यही सुना था। क्या व्यावसायिक नर्तिका, अस्थिर-चित्त, चचला वारयोषिता की भी अपनी भूमि और धरती के लिए ऐसी निष्ठा हो सकती है? यह बात सुनकर श्री को लगा कि जिसे हम पतित और घृणित, चरित्रहीन और कुत्सित कहकर समाज के सड़े अंश की तरह काटकर फेंक देते हैं, उसमे भी कहीं न कहीं कोई मानवी या दैवी अंश छिपा हुआ रहता है। शायद हम उसे पा न सकने के कारण केवल पाशवी अंश को देखते हैं और विरक्ति का अनुभव करते हैं। काई के नीचे निर्मल जल रह सकता है।

श्री ने पहले सोचा था कि जीवन के इस अनेक-स्त्री-वादी उन्मत्त से अहेरीपन से कुछ हटकर संजीदा जिंदगी बिताई जाय। और इसी विचार से वह शु चिन् से विवाह का प्रस्ताव करने आया था।

पर इस बीच में दुनिया बहुत बदल चुकी थी। चीन में जन क्राति हो चुकी थी। और तिब्बत को 'मुक्त' करने की उस नये चीन की प्रतिज्ञा और दुर्दम्य अभिलाषा थी। इस वात्याचक्र में शी-चुन् ने नया पेशा अख्त्यार कर लिया था। वह तरुण लामाओं के बीच मे चीन का प्रचार-साहित्य बेचती और इस प्रकार से एक राजनैतिक गुप्तचर का काम भी करती।

कलिम्पोङ की तेरपाईगुडी और ग्यांगत्से की सीमा तक के कई तिब्बती मठो मे मंगोल, चीनी तुर्किस्तानी, भोट (भूटानी) और नैपाल की ओर के भी आदमी आते और लामाओ की दीर्घ-दीक्षा और लम्बी-चौड़ी महापूजा से पाठ लेते। कहने को उन पर घोर बधन थे, ब्रह्मचर्य के और स्त्री-संग-वर्जन के। किसी लामासेरी या मठ के आसपास स्त्री की छाँह तक नही आ सकती। वह महापाप था। परन्तु मार की वे शक्तियाँ उस मठो से समादरपूर्वक अतर (रेस्पेक्टेबल डिस्टेंस पर बराबर अपना नग्ननृत्य संपन्न किया करती। और वज्रयान और सहजयान के पुराने पाठ दुहराये जाते। पचमकारों का आधुनिक अर्चन मुक्त रूप से चलता था।

सभी लामा या पुजारी ऐसे नहीं थे। परन्तु अधिकाश तरुण लामाओ का, कच्ची उम्र के दीक्षितो का इन प्रलोभनो से बच पाना सहज संभव नही था।

श्री ने शी-चुन् से यह सब जाना। तब उसने पूछा कि—"साम्यवादी समाज-व्यवस्था मे यह सब कैसे चलेगा? ये मठ-मंदिर, ये पूजाएं!"

शी-चुन् ने कहा—"वहाँ व्यक्ति को अबोध स्वातत्र्य घोषित है। नीति के ये तुम्हारे देश के दकियानूसी मान वहाँ नही रहेगे?" विचार प्रधान संवाद

श्री—"यानी स्त्री की पुरुष के प्रति एक निष्ठा का कोई मूल्य न होगा?

शी-चुन् ने छोटा-सा चीनी पंखा हिलाते हुए कहा—"यह अपनी-अपनी पसद की बात होगी। कोई किसी के बन्धन मे नहीं रहेगा। तिब्बत मे जैसे बहुपतीत्व था। अब वह मुक्त हो जाने पर नही रह सकेगा।"

श्री—"तुम्हारी बात का अर्थ मै नही समझा। क्या कानून, नियम, नैतिक शृखलाएँ, मान्यताएं, मनुष्य की मनुष्य के प्रति भावना..."

शी-चुन् झट से बोली—"यह सब राज्य निश्चित करेगा। यह सब इस लिये होता है कि स्त्री आज पुरुष की क्रीतदासी है। आर्थिक दृष्टि से उसकी गुलाम है। इसलिए पुरुषों ने अपनी अबोध कामेच्छा के लिए और स्वार्थपूर्ति के लिए पतिव्रत का ढकोसला युग युग से चलाया। उसे धर्म के मत्र-जलसे अभिसिचित किया और पवित्र संस्कार बनाया!"

श्री—"तो क्या पुरुष और स्त्री दोनो को सब प्रकार के संबंधो की छूट होगी ?"

शी-चुन्—"यह फिर व्यक्तिगत स्वतंत्रता का प्रश्न है। शासन यदि चाहेगा तो अमुक-अमुक प्रदेशों और जातियो के बीच मे विवाह अधिक होने देगा या नहीं होने देगा।"

श्री—"मतलब ?"

शी-चुन्—"स्त्री-पुरुष आखिर क्या हैं ? एक समाजव्यवस्था को बनाने बिगाड़ने वाले अंश ही तो हैं। उनकी इच्छाओं और प्रवृत्तियों पर सरकार या शासन-सत्ता का नियंत्रण रहेगा।"

श्री—"पर हिटलर भी तो यही कहता था।"

शी-चुन्—"मै यह सब नहीं जानती। मुझसे बहस न करो। मैं तो मेरे प्रिय, यह कह रही थी कि हम रगीत नदी की घाटी मे कब चलेंगे ?"

श्री—"मुझे प्रलोभन मे न डालो, शू-चिन्! मै पापी हूँ—मैने किसी स्त्री के प्रति जीवन मे निष्ठा नहीं बरती! सबको मै अपनी ही कला की साधना के साधन समझता आया!"

शू-चिन्—"मेरे अच्छे श्री! पाप-पुण्य के पचड़े तुम हिन्दुस्तानियो को बहुत सताते हैं। मैं कब चाहती हूँ कि तुम आजीवन मेरे होकर रहो। वह मेरा उद्देश्य ही नहीं है। मैं तो सिर्फ कह रही थी कि तुम हमारे लिए अच्छे एजेन्ट का काम कर सकते हो। तुम अच्छे ओहदे पर हो। सुनती हूँ तुम्हारे देश के सरकारी नौकर ही सबसे अधिक सरकार की नुक्ताचीनी करनेवाले हैं। और काचन और कामिनी के मामले मे कमज़ोरी भी उनमें काफी है। हमारा काम इतने से बन जायगा। हमारे देश की मुक्ति-सेनाओं ने तिब्बत को अधिकाश 'मुक्त' कर दिया। अब नेपाल और बर्मा और .."

श्री—"क्या कहा हमारे देश को तुम मुक्त करोगी ? तुम दो-टके की बेसवा!" श्री का दमित क्रोध जैसे उफन कर ऊपर आया। पर परिणाम उलटा हुआ। शू-चिन् नाराज नहीं हुई।

शू-चिन् ने श्री को बोलने नहीं दिया। अपने आलिंगन मे उसे उसने बाँध लिया। और अपने छोटे-छोटे ओठो से उसका मुँह बंद कर दिया।

दोनों बड़ी देर तक मदिरापान करते रहे। राजनीति का विषय जैसे दोनों की मनसा से छूट गया। और इसी तरह से कुछ दिन श्री के आनन्द से बीते। यद्यपि बार-बार उसके भीतर का अपनी देश की मिट्टी से गहरा लगाव, अपनी माता के प्रति प्रेम का भाव उभर-उभर कर आता, और कुछ होश मे आने पर उसे लगता कि जो कुछ वह कर रहा है, सही नही है। हो सकता है कि यह एक बदमाश, मक्कार औरत हो। और इसका नये या पुराने चीन से कोई सम्बन्ध नही हो। जैसे पुरुषो के साथ, वैसे ही राजनीति से भी वह निरी 'फ्लर्ट' कर रही हो।

वह जो भी हो, पर धीरे-धीरे श्री का मन इन विदेशिओ से उचटने लगा। क्या दिल्ली में रहते हुए उसने ऐसी ही और और देशो की मुक्त-मना और मुक्ताचारिणी मागलिकाओं को नहीं देखा था? ये मगलामुखियाँ और उनके ये मगलामोहन! ये अपने को नरोत्तम समझने वाले अधम परम-पशु! ये सर्वदा अनन्द मे रहने वाले छोटे-छोटे स्वार्थों के लोलुप व्यक्ति! अन्तर्राष्ट्रीयता की धोखे की टट्टी के नीचे साधारण राष्ट्रीयता का होम करने वाले ये लोग! श्री—जिसने जीवन भर स्त्री-लोलुपता मे अपना सरबस दिया—राष्ट्रीय कर्तव्यों के बारे मे सोचने लगा था! उसे एम० पी० की याद आयी—उसने जीवन भर राष्ट्रीय कर्तव्यो के बारे मे सोचते सोचते आखिर मे स्त्री-लोलुपता मे शरण ली थी। श्री को लगा वह इस शी-चुन् से भाग जाय। यह विचित्र भैरवी-चक्र है! यह नारी या शक्ति की विद्रूप विडबना है।

और एक दिन ऐसे ही अलताफहुसैन साहब से मुलाकात हो गई। सैलानी जीव कलकत्ते में किसी मुशायरे में आये थे। उन्हे दार्जिलिग देखने की सूझी। उनकी मुलाकात श्री ने शू-चिन् से करा दी। और अलताफ हुसैन को लगा कि उन्हे जन्नत की परी मिल गई। उनके सब सपनों की अधिनायिका, साक्षात कविता की प्रेरणा।

श्री मन ही मन हँसता हुआ पीकिङ् होटल लौटा। तब उदास और रिक्त मन से वह लौटा था कि सहसा उसे आभा का पत्र मिला।

: ६ :

भुवाली सैनेटोरियम

प्रिय श्री,

पता नहीं तुम कहाँ होगे ? तुम्हारा पता मुझे मेरी एक सहेली ने ला दिया। शायद तुम्हें यह पत्र मिल जाय। मिल जाय तो मेरी आँखे सदा के लिए झिपने से पहले तुम एक बार यहाँ आना, और मुझे मिल जाना। तुम पता नहीं कहाँ-कहाँ भटकते रहे। पर मेरे मन में बेबी के पिता श्री की तस्वीर वैसे ही अंकित है जैसे कोई भित्तिचित्र हो। वह मौसम और बेमौसम की आँखो की बारिश से नहीं धुलता। वह धुँधुआ जरूर गया है। मन की इन गुफाओं मे पता नही किस किस ने बसेरा डालने की कोशिश की। किसी ने इन चित्र और शिल्प की अभिनव अजंताओ मे उपयोगितावाद के चूल्हे भी जलाये, नारी का सश्रद्ध मन वह भी सहता गया। उसी धुँए की कुछ पुटे शायद चढ़ गयी हैं।

मै यहां कैसे आ गई—शायद तुम जानना चाहोगे ? मैने अपने मनको बहुत बश मे रखा। सभाला। पर इस ज़िन्दगी के समुद्र के किनारे की रेती बहुत धोखा देनेवाली होती है। वह पैरो के नीचे से कब खिसक गयी यह कहना कठिन है। सत्यकाम को शायद तुम नहीं जानते। उससे मेरी मित्रता बढ़ी। यहाँ तक कि मैने उससे कहा—मै तुम्हारे जीवन से सदा के लिए जुड़ जाने को तैयार हूँ।

पर सत्यकाम तुम्हारी ही तरह पुरुष निकला। तुमने विवाह किया, बेबी हुई और तुम मुझे छोड़ गये। पर सत्यकाम से मुझे लड़का हुआ—पर उसे मै जाबाल किस मुंह से कहूँ—उसने मुझे आश्वासन देकर मुझसे विवाह नही किया। वह अमरीका चला गया। केतकी के पति निर्मलराम उसे अपने साथ ले गये।

मेरे मानसिक विक्षोभ की प्रतिक्रिया मेरे शरीर पर हुई। मेरा वह छोटा सत्यकाम जी न सका। मेरा स्वास्थ्य गिरता गया।

और धीरे-धीरे मै, समाज से प्रताड़िता, यहाँ हूँ। छह महीने हो गये। और डाक्टर ने आशा छोड़ दी है। क्षय की अन्तिम अवस्था मे क्या होता है? जो अटल है, उससे मुँह मोड़कर क्या होगा?

मरने से पहले मैं तुम्हे एकबार देखना चाहती हूँ। बेबी अब बडी हो गई है। वह और मेरी साथिन मीना मेरी सेवा-टहल कर रहे हैं। पर सब जानते हैं कि बुझते हुए दीये की लौ को एक प्रबल झंझावात से बचाने की यह बेकार की कोशिश है। और दीया भी कैसा—जिसका स्नेह बूँद्-बूँद् चुकता जा रहा हो। वह अपनी वर्तिका के सहारे—अपने चित्त के अनबँटे सकल्प की दृढ़ता के सहारे कबतक जी सकेगा?

क्या मुझ जैसी परित्यक्ताओ के लिए समाज मे कोई स्थान नहीं है?

क्या मेरे जीवन की वेदना की उत्तरदायिनी केवल मैं हूँ?

क्यो ऐसा होता है कि समाज मे खुले माथे से प्रतिष्ठा और गौरव से लदे वे लोग घूमते हैं, जो स्त्रियों के साथ जिम्मेदारी का व्यवहार नहीं करते; जो नारी को निरा खिलौना समझते हैं—और पापिनी कहलाती हैं बेचारी स्त्रियाँ!

क्या पाप और पुण्य के बटखरे हमारे देश मे स्त्री और पुरुष के लिए अलग-अलग हैं?

आदिमकाल से समाज की व्यवस्था के ठेकेदार, ये स्मृतिकार और ये नियम बनानेवाले अपनी ही सुविधा को देखते आ रहे हैं और स्त्री को धीरे-धीरे अपनी नियमो की शृङ्खलाओं मे बाँधते चले आ रहे हैं। उसमे उस बेचारी के गले मे फाँसी लग गयी इस बात का भी ध्यान उन्होंने नहीं रखा। वे समाज के नीतिनियामक कहलाये। और वे लक्ष-लक्ष वर्तिकाएँ, वे दीपशिखाएँ चुपचाप जलबलकर भस्म की ढेरी बन गयी।

यहाँ, जहाँ से मै लिख रही हूँ अपार शान्ति है। प्रकृति चारों ओर से मौन, मुग्धा, मनोहारिणी, अपने चिरन्तन रहस्यो को छिपाये फैली हुई है। कहीं किसी ओर से कोई बेचैनी नही है। पर मुझे लगता है कि यह शान्ति मृत्यु की भीषण शान्ति है। इसमे जीवन निश्शेष हो चुका है। यहाँ आकर हृदय की धुकधुकी भी जैसे निस्पंद है। ऊपर निरभ्र, हिमजड़ित शिशिर का आकाश है;

नीचे ऊची-ऊंची पर्वतमालाएँ हैं। कूर्मांचल की सुन्दर घाटियाँ उस ओर होगी, कौसानी की रग बिरगी फूलों से लदी घाटियाँ—जहाँ फूलो से भी अधिक रगोवाली चटुल तितलिया मॅडराती होगी—जहाँ वृक्ष के मधु के छत्तो से महकते होगे। और जहाँ चीड़ और तून, देवदारु और पाइन के वृक्षो के रूप में धरती लाख-लाख हाथो से आसमान को छूने का प्रयत्न करती होगी। वही से इस निस्तब्ध मौन-हिम को तोड़ता हुआ कोई क्षीण-स्वर आ जाता है, शायद कोई गडरिया बाँसुरी पर कोई पहाड़ी धुन अलाप रहा है। क्या उस सुर मे विरह का एकाकीपन है? शायद कोई भोटियाओ का कारवाँ ऊपर धीमे-धीमे ले जा रहा है और याको के गले की घटियो का रुन-झुन टुन-टुन सुनाई दे रहा है।

ये ऐसे सूने, उदास और मरण के किनारे के क्षण हैं कि मुझे तुम्हारी याद हो आती है। मै जानती हूँ कि सूखे हुए फूल फिर नही खिलते। उड़ा हुआ रग फिर से नहीं आता, हवा मे मिलायी हुई तान फिर से नही गूँजती। पर फिर भी ये दूर की घाटी मे सूखती जाती हुई शरत्कालीन सरिता वसन्त मे फिर जीवन भरी होने का सपना देख रही है। बाढ का सुखद स्पर्श शायद उसके अंग-प्रत्यगों मे फिर उद्दाम यौवन जगा देगा? कौन जानता है कि मरुस्थलो मे उद्यान नहीं होंगे। या यह सब मेरे मन की प्रवचना है। एक दिवास्वप्न। एक निरा मायावी इन्द्रजाल—मनबहलावा, छलावा।

मै इस चिट्ठी मे बहक रही हूँ। पर श्री, मुझे तुम याद आते हो। तुमने मुझे ठुकरा दिया, फिर भी मै मन के सात परदो के भीतर तुम्हारी स्मृति को पालती आयी हूँ। अब जब कि जीवन की ज्योति मद्धिम हो रही है और पता नही अब बुझूँ तब बुझूँ कह रही है, मुझे तुम्हारी स्मृति उद्वेलित करती है।

मीनाक्षी, मेरी सहेली, के एक कवि-मित्र यहाँ अक्सर आते रहते हैं और कहते हैं कि मरण के बाद भी जन्म-जन्मातर है। जीवन की सरणि अखड है। और मरण उसमे सिर्फ माला मे गुरियाँ ठीक से बनी रहे इसलिए दी हुई गाठे हैं! वे कहते हैं मौत केवल 'पक्चुएटिग प्वाइंट' है। हो सकता है! वे अपने को शक्ति-पूजक कहते हैं। यहाँ आओ, तुमसे उनकी भेंट करा दूंगी।

वे कहते हैं कि दुनिया का सारा दुख इसलिए है कि हमने मूल, आद्या, सृजन-शक्ति, मातृत्व की अवहेलना और अवमानना की है ! वह जातियाँ और धर्म-पंथ अवश्य नष्ट हो जायेंगे जिन्होने नारी के साथ, आदिमाता के साथ इस तरह की उपेक्षा और प्रताड़ना का व्यवहार किया—इतिहास इसका साक्षी है ! सभ्यता का इतिहास उत्तरोत्तर नारी को स्व-स्थान दिलाने का इतिहास है !

श्री, तुम्हारी बुराई मै नहीं करना चाहती । बुराई मुझ मे भी थी । देवी-पुराण मे एक कथा है कि एक बार शिव ने पार्वती से कहा कि—"हे हिमालय की पुत्री, मैं चद्रमा की तरह हूँ, तुम काली हो अमावास्या की भाँति ! मै चदन-वृक्ष हूँ और तुम उससे लिपटी हुई नागिन सी काली हो !" पार्वती रूठकर चली गयी—वहाँ तप किया और साँझ के आकाश की तरह तप्त स्वर्णमयी काति लेकर वापिस आयी । और 'गौरी' कहलाई । योग की तपन से जली हुई गौरी शख, चमेली, चद्रमा के वर्ण की बनी और हिमगिरि की पुत्री हुई । श्री, मुझे लगता है कि अब मै बचनेवाली तो नहीं ही हूँ—इसी हिमालय की गोद मे कहीं मै अस्थि-शेष हो जाऊगी ।

पर तुम्हारा मेरे जीवन मे अभी अर्थ शेष है । तुमसे एक बार मिले बिना मेरी तपस्या पूरी नही होगी ।

आओ ! श्री और एक बार अपनी पत्नी को नहीं तो पुत्री को देख जाओ । मेरा प्रत्येक पल-पल मूल्यवान है । जीवन का घट रिसता जा रहा है । पता नही कब 'फूटा कुंभ, जलजलहि समाना' हो जाय !

और अत मे, मुझे एक वचन दो—अपने जीवन मे अब तक तुमने जो कुछ किया, किया । पर आगे अब मेरी शपथ है, किसी भी नारी का अपमान न करोगे । नारी का अपमान आद्यासृष्टि का अपमान है । और मनुष्य, सृष्टि की मूल उस शक्ति को ठुकराकर कहाँ जायगा ?

तुम्हारी आत्मीया

आभा

श्री ने पत्र पढ़ा । सन्न से रह गया । उसकी आँखो से कुछ झर चला—क्या वे पश्चात्ताप के आँसू थे ?

उसने भुवाली के लिए पहली गाड़ी से प्रस्थान किया।

: १७ :

"नये शाक्त ?" हाँ हम नये शाक्त हैं !" मीना के मित्र और कवि शंकरन् ने कहा—"हमे मातृपूजा मे कोई बुराई नहीं जान पड़ती। फिर मातृ-शक्ति की पूजा में क्या बुराई है ?"

मीना ने कहा—"यह सब आदिवासियो की सी बातें हैं। सभ्यता के इतने हजार वर्षों के चक्र को क्या तुम वापिस मातृ-सत्ताक समाज-व्यवस्था वाली दशा में ले जाओगे ?"

शंकरन् ने फिर गभीरतापूर्वक अपनी बात पर बल देते हुए कहा—"मै मातृ सत्ता, पितृ सत्ता कुछ नहीं जानता ! मै केवल यह जानता हूँ कि नारी को उचित स्थान समाज मे दिया जाना चाहिये। आज के बहुत से दुख इसी कारण है कि हमने स्त्री को उसका आदर स्थान नहीं दिया है। वह जब तक दलितों की श्रेणी मे रखी जायगी, तब तक हमारे लेखक-कवि और कलाकार उसे भोगसामग्री मात्र समझते रहेगे—संस्कृति विकृति ही बनी रहेगी !"

मीनाक्षी ने पूछा—"यह सब बाते तुम विक्टोरिया के युग के फेमिनिस्टों की तरह से करते हो ! स्त्री-पुरुष समानता, राजनैतिक क्षेत्र में समान वोट पाकर भी दुनिया मे कौन सा चमत्कार घटित हो गया ?"

शंकरन् ने कहा—मैं राजनीति मात्र को गलत समझता हूँ। शासन-व्यवस्था सुविधा की समस्या है। उससे कभी मनुष्य के आचार-विचार नियन्त्रित नही किये जा सकते। अंततः और अथतः भी जन्म और सृष्टि के उपादानो का प्रश्न ही सच्चा प्रश्न है ! उन्हें झुठलाकर हम कहाँ के रहेगे !"

मीनाक्षी—"शंकरन् ! यह तुम्हारा दुराग्रह मात्र है कि स्त्री मात्र पवित्र होती है ! क्या स्त्रियो मे वामाचारणियाँ नही रही है ?"

शंकरन्—"मै सिर्फ सौदर्यलहरी का एक श्लोक जानता हूँ—पारस से छूकर लोहा तत्काल सोना बन जाता है और गलियो की गटरें गगा मे मिलकर पवित्र हो जाती हैं। उसी तरह से पुरुष के सब प्रकार के मलिन मन उसी आदि शक्ति मे आसक्त होकर निर्मल बन जायेंगे।" और किसी परमाराधक की भाँति

सश्रद्ध होकर आँखें मूँदकर शंकरन् ने आचार्यरचित शिखारिणी का पाठ शुरू किया—

"अयं स्पर्शे लग्नं सपदि भवते हेमपदवी
यथा रथ्यायाथः शुचि भवति गंगौघमिलितम्
तथा तत्तत्पापैरतिमलिनमन्तर्मम यदि
त्वयि प्रेम्णासक्तं कथमिव न जायेत विमलम् ॥"

मीनाक्षी को मालूम था कि शंकरन् भावुक व्यक्ति हैं और ऐसे जब उनके मन में कभी आदर्शवाद का झोंका आ जाता है, तो उत्फुल्ल मन वे घंटों इसी प्रकार संस्कृत श्लोक दुहराते गाते रहते हैं !

कुछ समय बीतने पर मीनाक्षी ने प्रस्ताव रखा—"चलो शंकरन् ! हम आभा के पास चलें। उसके लिए कुछ फूल ले चलें। उसे ये पहाड़ी लिली के फूल पसंद हैं !" और वह बाग मे फूल चुनने चली गयी।

उधर से बेबी भी आ गयी। और वे सब आभा के कमरे मे पहुँचे।

"कैसा लगता है, आभा ?"

"अब मै बिल्कुल अच्छी हो गयी हूँ, मीना ! मुझे बार बार पूँछ कर मेरी आयु के क्षण कम क्यों करती हो ! मै अब जी उठी हूँ ! मुझे विश्वास है कि मेरे परम प्रियतम से मेरा पुनर्मिलन होगा। मैने स्वप्न मे आज अपने विवाह के बाद के वे सब दिन देखे। कैसे स्टूडियो मे श्री ने मुझे अपने चित्र दिखाये थे। कैसे वह मुझे प्रवास पर दूर देशो मे ले गया। और..."

आभा खाँसने लगी।

शंकरन् ने कहा, "आप संपूर्ण विश्राम लें। ज्यादह बोलना भी आपकी अवस्था की रोगिणी के लिए ठीक नहीं !"

मीना—"यह सब पुरानी बातें याद करने के बजाय कुछ ऐसा कीजिये आभा दीदी कि जिससे आपके मन को सुख हो !"

बेबी ने इस पर सुझाव दिया कि आभा को कविताएँ सुनना अच्छा लगता है। और कवि शंकरन् वहाँ उपस्थित थे ही।

आभा—"कविता एक तरह का मार्फिया है। थोड़ी देर के लिए यह मूर्च्छना का काम दे सकती है। पर वह स्थायी संतोष नहीं है!"

मीना ने कहा—"स्थायी, जीवन में बहुत कम चीजें हैं आभा दीदी! स्थायित्व हमने अपनी सुविधा के लिए गढ़ा हुआ एक शब्द है!"

शंकरन् ने कहा —"बहस छोड़िये! स्थायी चिच्छक्ति है! स्थायी पुरुष की प्रकृति पर विजय है! स्थायी मनुष्य की टोह है! इस सारी नित्य-परिवर्तन मयी लीला में भी कुछ है जो हमें टिकाये रखता है—उस स्थिति के बिना गति अर्थ शून्य है!"

मीना—"इस दार्शनिक चर्चा से हम कहाँ पहुँचेंगे? उससे हमें क्या करना है? शंकरन्, आभा को अपनी कविताएँ सुनाओ!"

शंकरन्—"हम कविता लिखना नहीं जानते। हम तो अपने वर्णनात्मक ढंग की मन के इम्प्रेशन्स अंकित करने वाली कुछ पद्यरचना करते हैं—हम नहीं जानते कि कविता के पारखी कहाँ तक इससे प्रसन्न या संतुष्ट होंगे। पर आभा के लिए मैं सुना देता हूँ।" और उसने एक नोटबुक निकाल कर पढ़ना शुरू किया—

पहली कविता है "दक्षिण

मेरे मन में
बसा हुआ है दक्षिण
बन कर स्मृतियों का धन।
चट्टानों पर चूर चूर होने वाली
उत्ताल समुद्र-तरंगों का वह
प्रचंड, फेनिल,
धवल, अनाविल,
अहरह भैरव
अट्टहास-रव।
चिर-बिरहिन कन्या कुमारिका
खड़ी लिए नव मधूक माला।

शुचीन्द्र के अम्बन् का वैभव ।
द्राविड चैनिक संस्कृतियों के
मिश्रण, मलाबार के मोहक
वास्तुशिल्प का अद्भुत गौरव ।
पंप और वेमना तथा
एलुत्तच्छन् औ' एकनाथ की,
कम्बन् की रामायण का रस
बसा हुआ 'मानस' में चौरस ।
ज्यों मंदिर के साथ तीर्थ हों
ज्यों मंदिर के सात तीर्थ हों ।

कितने अद्भुत विविधवर्ण के
पीले, लोहित, नील, स्वर्ण के
पुष्पों की सुगंध से मोहित,
चंदन-अर्चित, वनवन करता मंत्रोच्चारण,
मलय-पवन, निर्वसन पुरोहित,
कितनी प्रलम्ब-मुक्तकुंतलाएँ है सोहित
ये जूड़े या नागवेणियाँ केतकि उपवन,
श्यामच्छाया के घन अंचल में जैसे सतरंगा रोहित !

दक्षिण भारत के वे विशाल गोपुर, कोविल
भव्य वास्तु के, कुशल शिल्प के स्मारक अक्षय
प्रस्तर में मानव का कौतुक !
नाग कन्यका दीपधारिणी
अप्सरियाँ वे मनोहारिणी
विवस्त्र वक्षोजों की, स्वस्थ, सुघर रंभोरु मूर्तियाँ
उच्च स्वर्ग के नभ चुंबी शिखरों से लेकर

भू देवी तक,
कितने सुर-नर असुर, शैव-वैष्णव, खग-पन्नग,
कितनी देव-सभाएँ-चित्र सभाएँ, एक नया जग !
यक्ष और गंधर्व, यक्षिणी, रति, गण, वाहन,
पुराण और इतिहास-लोकश्रुति का अवगाहन
कर कितने जन
श्रम का कण-कण
देकर कितने वर्षोंतंक पत्थर को करते थे सार्थक ।

वे हैं केवल सागर की उत्तान लहरियाँ
जो चट्टानों पर सिर धुन-धुन
रह जाती कण-कण बिखेरकर
यहाँ मनुजने छीनी से उन चट्टानों का
क्या कर डाला, शाश्वत, सुन्दर,
गतिमय, मनहर !
ऐसा दक्षिण आज पुनः हो उदार-आशय, उदार-मनमय
निर्भय, निस्संशय औ' चिन्मय !

'दक्षिण तो यम की दिशा है न !' मीना ने कहा ?

आभा ने कहा—'मरण के देवता की बात छोड़ो। मुझे कविता से शक्ति मिलती है। शक्ति के विषय में कोई नयी कविता सुनाओ, शंकरन् !'

शक्ति के विषय में प्रत्येक व्यक्ति की अपनी अपनी धारणा होती है, जैसा काल, जैसा देश, जैसी परिस्थिति हो। जीवन से हारी, थकीमादी आभा भुवाली सैनोटोरियम मे पड़ी, कौन सी शक्ति शब्दो के सहारे अपने आप में उतारना चाहती थी ? शंकरन् की तुकबंदियों में क्या वह शक्ति थी ? या सिर्फ अंधा दूसरे अंधे को राह सुझाने का अभिनय कर रहा था ? क्या हमारी सारी नेताई निरा यही प्रयास नहीं। शंकरन् ने पहले मना किया।

और फिर कवि ने आग्रह करने पर अपनी दूसरी रचना सुनाई। उसका शीर्षक था—'ब्रह्मपुत्र-कामाक्षी'

ब्रह्मपुत्र नद विशाल
विस्तृत, व्यापक, उदार
लौहिता तरंग - माल,
क्रोध भरी परशु - धार
नरकासुर से डरकर
छोड़ा निज नील-शैल
छोड़ा या निज जौहर
कामाक्षी ने सचैल !
आकर के ली डुबकी
युग-युग तक वह गूँजी
रस के पर्वत भीजे
उर - उर चेरापूँजी !
ब्रह्मपुत्र नद विशाल
छोड़ हिमालयोत्संग
गहन विपिन शाखाल
शलओ-तमाल् उलंघ,
हहराता वेग अमित
होता गम्भीर मंद
या शाबर - मंत्र - जडित
प्राग्वैदिक मुक्तछंद।
आया यह प्राग्ज्योतिष
देखे आहोम - झुंड
देखे क्रव्याद नाग
करते आखेट मुन्ड !
ब्रह्मपुत्र, तट अजोड

कितने उत्थान पतनः
द्राविड, मंगोल, भोट,
मलय, आर्य, हूण, यवन !
सभ्यता यहाँ धीमी
पूजा यहाँ आद्या की
'शिव' भी है 'शक्ति'-बद्ध !
अर्पित है कामाख्यी
पूजित है प्रथम-शक्ति
निजरूपा अनामरणा
पूजित है त्रिपुरवती
कौमारी, निरावरणा
ब्रह्मपुत्र नद विशाल
तरणी से तंत्र-मंत्र
ढले, चले प्रखरचाल
अब आये वाष्प-यंत्र !
भूल गये सती - कथा,
बस बाकी कामुकता
भूला शिव - काम-व्यथा,
अश्रद्ध कब झुकता ?
भूला अधुना पशु-नर
जागृति समझा सुषुप्ति
भूला वे स्वस्थ पितर
खोजता 'अनंग'—तृप्ति !
ब्रह्मपुत्र नद विशाल
'शक्ति' आजमाओगे ?
उत्प्लव में बहा डाल
ये मानव, ये घोंघे

आभा कविता सुनते-सुनते अपने मे डूबी सी, सो गयी। धीरे धीरे मीना, शकरन्, बेबी वहाँ से उठ आये।

साँझ को काठ गोदाम पहुँचकर श्री ने यह सोचा कि वैसे भुवाली की बस की अगर प्रतीक्षा की तो बहुत समय बीतेगा, इसलिये रात का समय होने पर भी और कोई टैक्सी वाला विशेष दाम देकर जाने को तय्यार नही था, फिर भी उस ने एक ड्राइवर को तय किया। मुँह माँगें दाम दिये और चल पड़ा!

पहाड़ के ये चक्किल, सर्पिल, रास्ते? कोई होशियार ड्राइवर ही होगा जो कि उनमे से मुसाफिर को ऐसी अँधेरी रात मे बचाकर ले जाय!

रास्ते मे श्री ने सोचा कि मैने आभा को तार दे दिया होता तो अच्छा होता। वह राह देखती रहती! जीवन मे प्रतीक्षा ही तो है जिसे हम दूसरे शब्दो मे सुख कहते हैं। श्री का जीवन-सूत्र ऐसा ही रहा है कि प्राप्ति का दूसरा नाम उसके लिए दुख रहा है। जो अनभूत है, जो अप्राप्य है—वही तो हमारा स्वप्न है, सुख की काल्पनिक निरतर बढ़ने वाली और बुलाने वाली क्षितिज की सी अकुलाहट है। क्या सुख मात्र ऐसा टैटैलस का भरम है?

फिर कार की गति के साथ-साथ श्री का मनश्चक्र भी जोरो से घूमने लगा आभा अब उसके लिए एक धुँधली स्मृति मात्र रह गयी थी। पर उसने उसके साथ किये हुए प्रथम आनन्द विहार की स्मृतियों का पूरा ताँता उसके पासपत्रावली के रूप मे सुरक्षित था। वह अपने सामान के साथ वह भी ले आया था।

कार चल रही थी और एक जगह पर ड्राइवर ने बड़े खतरनाक घुमाव पर ब्रेक जोर से लगाया। और कार जैसे गिरते-गिरते एकदम बच गयी। तब ड्राइवर से बोलने की श्री की इच्छा हुई। उसने पूछा—"तुम लोग रोज ही जिन्दगी के साथ इस तरह खेल करते हुए चलते हो। मौत को चकमा देना जैसे तुम्हारा काम है। वह हर मोड़ पर और झाड़ी मे दुबकी जैसे बैठी है!"

ड्राइवर ने सूखी हँसी हँसते हुए कहा—"यह रोज का महाविरा है, बाबू जी! इसमे अब कोई अचरज नही!"

रास्ता घना और अँधेरा था। सुनसान। कही कोई जगली जानवर रास्ता काटकर चला जाता। उसकी रात को चमकनेवाली आँखें मोटर की तेज रोशनी

में ठिठकी सी क्षणेक खडी रह जाती। और बाद में उसका भूरा-भूरा शरीर पता नहीं किस सूचीभेद्य तमिस्रा में खो जाता। जीवन मे सच्चे प्रणय के साथ भी क्या ऐसी ही क्षणजीवी पहचान होती है?

श्री को एक एक कर गत जीवन के ऊँच-नीच याद आने लगे। कितनी घाटियाँ उसने पार की थीं—फलों से लदी, सोनहली, सुख-संतोष की धूप से ऊष्म! और पहाड़ी चोटियाँ तब नजर से ओझल हो गयी थी। परन्तु पथ की बाधाएँ क्या यो रुकती हैं? चढ़ाई के वे साँस फुलाने वाले, शारीरिक कष्ट के क्षण। जीवन कैसी विचित्र कंथा है—कहीं जरींन डिजाइन हैं तो कही मोटा खुरदुरा गाढ़ा है! पर सबके सूत जैसे एक दूसरे मे जुड मिलकर एक हो गये हैं। उनमे अलग-अलग चीन्ह पाना कठिन है।

आभा के प्रति उसका मन एकदम प्रार्थनामय हो आया। परि-ताप की आँच मे तप कर उसके मन का लोहा लाल-लाल हो उठा। वह जैसे गलने लगा।

वह जैसे प्रतीक्षा कर रहा था कि कोई कठोर हथौड़े का प्रहार उस पर करे। और उसे आकार मिलता चले, आकार मिलता चले।

इस आकार के बारे मे उसके मन मे कोई खास नक्शा नहीं था। कोई ईर्ष्या शेष नही थी। कोई ईहा बची नहीं थी।

और कार अपनी अविराममति से चली जा रही थी। मानो नियति हो!

श्री सदा नियति का उपहास करता हुआ—भाग्य को ठुकराता हुआ चला है। क्या होती है यह मनुष्य से बाहर और उससे बड़ी यह शक्ति? पर आज जैसे वह मन के भीतर से आर्द्र हो आया।

वह सोचने लगा कि यह शक्ति और कोई नही स्त्री है! हाँ, जीवन में आई हुई प्रथम स्त्री!

"आभा! आभा!!"—जैसे उसका मन पुकार-पुकार कर कह रहा था—चीत्कार दिशाओं में खो जाने वाली थी। पर उसके मन का खँडहर,

उसकी आत्मा के फसल कटे हुए खेत के बचे हुए ठूँठ उस आभा मे स्वर्णिम और सुषमामय हो उठे। उस पर उगी-छितरी घास भी सोनहली हो आयी।

बेचारा श्री! उसका शरीर उसके मन के साथ जैसे नही चल रहा था! वह फूट फूट कर रो उठा। ड्राइवर ने मुड़ कर देखा— सवारी को पता नहीं क्या हुआ है। वह सिसक रहा है—पुरुष होकर इतनी व्यथा!

उसने कुछ पूछना चाहा पर उस समय तक आसमान मे पौ फट चुकी थी। आकाश मे ललाई सी छा रही थी। और आकार कुछ स्पष्ट हो रहे थे— एक से दूसरे का रूप अलग-अलग दिखाई दे रहा था।

"ये आ गया सैनिटोरियम का फाटक!" ड्राइवर ने कहा।

श्री को लगा कि अब आभा से मिलने वह अचानक बढ़ेगा। सीधे वही पहुँचेगा। इस तरह 'सरप्राइज' मे बड़ा सुख है! सारा जीवन ही उसका एक के बाद एक ऐसे अचरज की शृंखला है। हर नये मोड़ पर एक खतरे को बचा ले जाने मे एक अनुभूत सुख भी तो है!

श्री ऐसे ही साहस का दूसरा नाम है!

× × ×

रोहिणी के कमरे मे एकदम निश्शब्दता थी।

टैंपरेचर चार्ट स्तब्ध था। घड़ी की टिकटिक उसी अविराम गति से चल रही थी।

बोतलो मे विविध रग का पानी चुपचाप सोया पड़ा था।

कहीं कोई आवाज नहीं आ रही थी। मानो मरण-शान्ति सब ओर छाई हो। महामौन का साम्राज्य था।

आभा खिड़की से दूर पर दिखाई देने वाली पहाड़ की चोटी की ओर देख रही थी। कुहरे जैसे विविधाकार बादल घिर-घिर आते थे और पर्वतों की 'आउट लाइन', उनका रूपाकार जैसे उनमे खो जाता था। क्या जीवन और मरण की सीमाएँ ऐसी ही अस्पष्ट नही हैं?

मरण क्या निरा कुहरे का झीना पर्दा नहीं है?

इतने में सिस्टर घबड़ाई हुई आई और उसने फुस-फुसा कर यह समा-

चार दिये—"कोई आदमी सेनिटोरियम तक स्पेशल कार में आया था। वह दरवाजे पर नही पहुँचा था कि उसकी कार का ब्रेक न चल सका। और वह लुढ़क कर नीचे गहरे खड्ड मे गिर गया। लोग पता लगाने गये। पर उसका कुछ पता नहीं चला! न जाने कौन अभागा होगा?"

आभा ने सुना। फीकी मुस्कराहट से पूछा—"क्या आज मेरी कोई एक्सप्रेस चिट्ठी या तार नही है? मुझसे मिलने के लिए एक मेरे मित्र आने वाले थे!"

सिस्टर ने कहा—"नही! कोई समाचार नहीं!" मन मे कहा—शायद वही हो जो एक्सीडेंट का शिकार बना।

मिस्र के पुराण मे एक पक्षी होता है जो जलता है। और अपनी राख मे से ही फिर से उसका उदय होता है। उसकी याद आभा को देखकर होती थी।

महामिलन का क्षण शायद निकट आ गया था। आभा मुस्कराई। बादलभरे आकाश मे जैसे स्वर्णाभा फैल गयी हो। एक आभा मिटकर, दूसरी का उदय हो रहा था। या शायद आभा आद्या बन रही थी। पूर्णशक्ति।

और आभा ने अन्तिम साँस ली।

सिस्टर ने वही किया जिसे कबीर ने कहा था—'चदरिया उढ़ावै चलती बिरियाँ!"

× × ×

नदीकिनारे के स्मशान घाट पर स्मशान काली का एक उपेक्षित सा मन्दिर था। वहाँ मीनाक्षी और शंकरन् इस घटना के कई दिनो बाद एक सायं-काल आकर बैठे। स्मृतियों की तरह मेघमाला से लदी सायकाल की द्वाभा बड़ी देर तक पश्चिम के द्वार पर ठिठकी खड़ी रही।

शकरन् ने कहा—"मैं कहता नही था नारी क्षण भर की प्रेयसी परन्तु अनन्तकाल की माता है!"

मीनाक्षी ने कहा—"कुमारी आभा को तुम क्या कहोगे?"

शंकरन् ने कहा—"हम कुमारी को भी माँ कह कर ही सम्बोधित करते हैं। हमारी परम्परा मातृपूजकों की है। हम शक्ति का अंश सर्वत्र पाते हैं चाहे वह आग् ज्योतिप में हो चाहे कन्या कुमारी में!"

मीनाक्षी चुप रही! उसका मन आभा की याद से विह्वल हो उठा। क्या आभा समाज की वेदी पर दी गयी कुमारी-बलि थी। क्या वह उसका दोष था कि यों वह घुल-घुलकर जल गई।

शंकरन् ने अपना समाधान शक्ति के स्तोत्र में पा लिया था। वह जोरों से गाने लगा।

तूलेरु तूशुपोल विनैयेरु मेय्येनुस्
तोक्किनुट् चिक्कि नालुम्
चुललेरु काटिनिडै यललेरु पंजेन
चूरैयिट्टरिवै येल्लाम्
नालेर नालेर वार्तिकमेनुं कूटिन्
नटपेर घुललुडैन्दु
नयनंगालटदोर ऊरेरु पोलवे
नान् निलंदनिल अलैयवो?
वेलेरु तंदियैक् कनपंतियुकन् वेन्द्
वि विरैयेरु मालैशूडि
चिरणेरु मेघंगल वेप्पैरि मरैवुर
वेरुटिट्य करुं कून्दलाय।
वालेरु करिणये! विडैयेरु मेम्बिरान्
मनदुक्किशैन्द मयिले!
वरेराजनुक्किरकूण-मणिया-युदित मलै
वलक्कोदलि! पेरणुमैये!"

और शंकरन् ने अर्थ भी कहा :

'हे शक्तिस्वरूपे! काले मेघ के समान श्यामोज्ज्वल तुम्हारा अलक-भार

मेघवाहन मन्मथ को भी हतश्री कर भगा देता है। तीखे खड्ग की धार से भी तीक्ष्ण हैं तुम्हारे कोमल नयनो के दृष्टिपात, अधर्म का निरसन एव धर्म का पालन तुम अपने दृष्टिपात-मात्र मे कर सकती हो! भगवान् शिव की अर्धांगिनि ! मुझ अभागे का उद्धार करो। धूलिधूसरित वस्त्र की तरह कर्मविपाको से दूषित इस चर्मनीड मे मैं बुरी तरह बध गया हूँ। प्रचंड झंझावत में फंसे कपाल पर आग लग जाय, तो उसे बचावे कौन ? वही स्थिति मेरी है, हे माता ! इस ऐंद्रजालिक प्रपच मे उलझे रहनेवाले मुझ दीन के अत्यल्प सद्ज्ञान मे भी अहंकार और अज्ञान की आग लग गयी है तथा मौका पाकर उधर यमराज का दूत बनकर बुढ़ापे ने भी मुझे अपना आखेट बना लिया है। हे उमादेवि ! अब मेरा दुर्बल मन निरुपाय हो गया है। किंकर्त्तव्यविमूढ़ मै निर्लक्ष्य एवं निराश्रय हो भूला भटका फिर रहा हूँ—अंधे देहाती शूकर की तरह ! जगदम्बे ! मेरी इस क्षुद्रातिशूद्र दशा को हो देखना चाहती हो क्या तुम ? न, न, अम्ब ! इस गर्हित, घोर अधःपतन से शीघ्रातिशीघ्र मेरा उद्धार करो !'

तमिल शैव सत तायुमानवर स्वामिहळ् के इस देवीस्तोत्र की गूँज बहुत देर तक वहाँ नदी किनारे गूँजती रही।

आभा और श्री की कायाएँ पंचतत्व मे मिल चुकी थी। विभूति बची थी। वही चिता-भस्म 'शिव' का श्रृंगार है।

मीनाक्षी ने शंकरन् से कहा—उठो, चलें।

शकरन् गुनगुना रहा था—

भूतमोडु पलहिवकर् इंदिरिय-मामुपेरुल्
पुंदिमुद-लान पेरुल्
पोराडु कोपादि राक्षसप् पेरुलेन्
बोधत्तै यूडाकित्त
नादवडिवाहिय महामंत्ररूपिये !
नादान्त वेट्ट वेळिये !

नर्धभयभान् पयिर तलैयवरु मेघमे !

ज्ञानवा-नंद-ममिले !

'हे नादरूपिणी ! तुम महामन्त्र के रूप मे घट-घटवासिनी हो तथा अनंत नादार्णव के आरपार भी केवल तुम्ही व्याप्त हो ! तुम अमृतवर्षिणी मेघमाला हो जिससे जीवन पाकर सत्सम्प्रदाय और सद्धर्म के पौधे पनपते हैं ! विवाद और वितंडा पर तुले हुओ को अगम्य है, माँ, तुम्हारी अपार करुणामयी महिमा '"

●

भूमिका

यह लेख मैने जनवरी १९४८ के 'नारी' पत्रिका के अंक मे लिखा था। आज लघु उपन्यास पूरा करके पुनः पढ़ने पर लगा कि अत मे भूमिका के रूप में इसे दे दूं। सो यह है :

शतपथ ब्राह्मण में बताया गया है कि स्त्रियाँ पुरुषो के बराबर किस प्रकार थीं : 'अयज्ञियो वा एव यो पत्नीकः।' 'अधो हवा एष आत्मनो यज्जाया।' ऋग्वेद में भी होता और उसकी पत्नी दोनो के एक साथ यज्ञ कर्म करते थे ऐसा उल्लेख है 'य । दंपती सुमनासा सुनुत आचधातिः। देवासो नित्ययाशिरा ॥' अथर्ववेद मे ऐसा भी उल्लेख है कि स्त्रियों का उपनयन जनेऊ होता था और उसके बाद वे बहुतसा समय वेद अध्ययन में बिताती थी। घोषा, लोपामुद्रा, गार्गी, वाचक्नवी आदि महिलाएँ मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की समकक्षिणी थी। गृह्यसूत्रों में उल्लेख है कि गृह्याग्नि के रक्षण मे रात और दिवस का होम पत्नी ही करे। जब नवान्न आता, तब फसल के उत्सव मे सीता यज्ञ स्त्रिया ही करती थी। रामायण के आधार पर कहा जा सकता है कि जब राम कौसल्या से पूछकर वनगमन के लिए प्रस्तुत हुए, तब कौसल्या होमकार्य मे निमग्न थी। बलि की पत्नी तारा भी मन्त्रज्ञाता थी। सुन्दरकाड मे उल्लेख है कि हनुमान सायंकाल थककर सीता के शोधार्थ सरोवर के किनारे गया, क्योकि उस समय स्त्रियाँ शाम को सरोवर पर जाकर संध्यावदन आदि करतो थीं। जनेऊ के बाद जिन लड़कियों की थोड़ी बहुत पढ़ाई होते ही शादी हो जाती उन्हें 'सद्योद्वाहा' कहते थे, जो जल्दी शादी न कर वद वेदात का अध्ययन करती रहती उन्हें 'ब्रह्मवादिनी' की उपाधि दी जाती थी। याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी इस प्रकार की वेदात जानने वाली महिला थी 'काशकृतना' उन स्त्रियों की उपाधि थी जो पूर्व-मीमासा पढ़ती थी।

बुद्धकाल मे हमे चुल्लवग्ग में ऐसा उल्लेख मिलता है कि पहले तीन

बार भगवान तथागत ने भिक्षुणियो को प्रवज्या या 'दीक्षा' लेने से इन्कार कर दिया। महाप्रजापति गौतमी के आग्रह पर अत मे बुद्ध ने स्रोत आपत्तिफल, सकृदागामिफल, अनगामिफल, अर्हत्फल प्राप्त कर लेने वाली स्त्रियो का संघ मे आने की अनुमति दी। अट्ठ गरुधम्मा 'आठ उत्तरदायित्व' का उन्हे पालन करना पड़ता था। थेरीगाथा मे जिन दर्शन शास्त्र की अध्येता महिलाओ का वर्णन है उनमें बत्तीस कुमारी और अट्ठारह परिणीताएँ हैं। अविवाहितो मे से शुका, अनोपमा, सुमेधा अमीर घर की थी। फिर भी आजन्म कौमार्य व्रत पालन कर वे दर्शन के अध्ययन मे लग गई। अश्वलायन सूत्रों मे सुलभा, वडवा, प्रातिथेयी आदि उपाध्यायार्थ 'अध्यापिकाओ' का उल्लेख मिलता है। जैनो मे भी स्त्रियो के पर्याप्त अधिकार थे। भगवान महावीर की माता प्रियकारिणी राजसभा मे जाकर सम्मानपूर्वक वाद-विवाद करती थीं। हरिवंश पुराण सर्ग १२ मे उल्लेख है कि जयकुमार भगवान का द्वादशागधारी गणधर हुआ और सुलोचना ग्यारह अंग की धारक आर्यिका। आदिपुराण पर्व १६ मे भगवान आदिनाथ ने अपनी पुत्रियों ब्राह्मी और सुन्दरी को पढाया और यह उपदेश दिया है कि 'अगर नारी पढ़ी लिखी विद्यावती हो तो वह स्त्रियों मे प्रधान गिनी जाती है।'

फिर प्रश्न उठता है कि 'स्त्री शूद्रैनाधीयताम्' यह वैदिक नियम जो माना जाता है, यह कब से शुरू हुआ? बादरायण, जैमिनी आदि स्त्रियों के वेदाध्ययन के विरोधी नही थे। परंतु मेगस्थनीज लिखता है कि 'ब्राह्मण अपने दर्शन स्त्रियो को नही पढ़ाते हैं।' अतः पतंजली से पूर्व करीब ईसा से पूर्व ढाई सौ के समय शूद्र तथा स्त्रियो का विद्याधिकार समाप्त हुआ था। कुछ लोग इसका कारण पार्थियन, शक, कुशाणादि विदेशियो का आक्रमण बतलाते हैं, तो डा० अ० स० अलतेकर इसका कारण आर्यों का अनार्यों से विवाहबद्ध होना मानते हैं। वह कुछ भी हो, मनुस्मृति में आकर 'नास्ति स्त्रीणा क्रिया मैत्रेरिति धर्म व्यवस्थितिः।' की व्यवस्था दी गई है। धीरे धीरे स्त्रियो का जनेऊ भी बंद पड़ गया। उनकी शिक्षा की उपेक्षा होने लगी। चौथी पॉचवी ईस्वी सदी से बाल विवाह बहुप्रचलित हो गया। विवाह की मर्यादा ग्यारह बारह से सात आठ पर आ गई। स्त्री पुरुष की भोग दासी बन गई। प्राकृत काव्यग्रथ

गाथासप्तशती में हाल ने अनेक कवयित्रियो की रचनाएँ दी है, अतः इस समय तक स्त्रियों का पढ़ना लिखना बिल्कुल बद नही हुआ था। राजशेखर की पत्नो समालोचना शास्त्र मे पारगना थी और 'रूसा' नामक एक वैद्यक की लेखिका भी आठवीं सदी मे मिलती है। बारहवी सदी तक आते आते देश की साक्षरता का प्रमाण गिर गया। स्त्री अज्ञान के गर्त मे ढकेल दी गई। पठान मुगल काल मे तो यह दशा और भी बिगड गई। यद्यपि स्त्रियों मे विद्याप्रेम कम हो गया था, फिर भी कई रानियो के नाम भारतीय इतिहास में गौरव से लिखे जा सकते हैं जैसे प्रभावती गुप्ता वाकाटकी, विजय भट्टारिका, कुंकुमदेवी आदि। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से जाना जा सकता है कि उस समय सूत कातकर अपना तथा कुटुम्ब का पेट पालने वाली स्वाभिमानिनी विधवाएँ भी थी।

आज, १५ अगस्त १९४७ से पूर्व तक, अंग्रेजी शासन काल मे स्त्री शिक्षा का जो रूप हम देखते हैं वह दयनीय है। बहुत कम प्रान्तो या रियासतो मे प्रारंभिक शिक्षा निःशुल्क और सर्वव्यापी है। और वह त्रावणकोर आदि मे हो भी तो शहरो मे, देहातो मे नही। पहिले तो देहातो मे वैसे ही बच्चो के लिये स्कूल नही, बच्चियो का प्रश्न ही कहाँ उठता है, जिन्हें हिंदू समाज मे हीन माना गया है। तीस करोड़ हिंदुओ मे से आधे या दो तिहाई बच्चे बूढे स्त्रियाँ ले लें तो इन दस पद्रह करोड़ो की दशा, शिक्षा की दृष्टि से गई बीती है। परिणाम यह है कि गाँव की भोली स्त्रियो को, शिक्षा के अभाव मे, कोई फँसा लेता है साहूकार जमींदार उनका आर्थिक शोषण करते हैं। शहरो मे आकर वे कुमार्ग पर चलने लगती हैं। यह उच्च और निम्न या दलित मानी जानेवाली जातियों मे से कई उदाहरणो से सिद्ध है।

प्राथमिक शिक्षा के पश्चात् जब हम द्वैतीयिक श्रेणी की : सेकेंडरी : शिक्षा की बात लेते हैं तब शहरो में और कुछ देह तों मे स्त्रियों के मिडिल स्कूल और हाईस्कूल हम पाते हैं, जिनमे वही 'तुर्की चाल, कदम अगरेजी हिसाब' रहता है। माध्यम मातृभाषा नहो होता। कई अनावश्यक विषय पढ़ाये जाते हैं। ललित कला अथवा गृह विज्ञान आदि के पढ़ाने का पर्याप्त प्रबन्ध होता ही नहीं। नारी के इस प्रकार, कुपढ़, अधपढ़ रह जाने का परिणाम हमारे जीवन और

साहित्य पर यह है कि जिन प्रान्तो मे नारी शिक्षा कम, पर्दा प्रथा अधिक है वहाँ का साहित्य अपेक्षाकृत अधिक रोमेंटिक और स्वप्नदर्शी बन गया है। वहाँ नारी उर्वशी, अप्सरा, 'अर्धेक स्वप्न तुमि अर्धेक कल्पना. .शुधु विधातार सृष्टि नाह तुम नारी।' ऐसी बन गई है या 'रूप-तारा तुम पूर्ण प्रकाम, मृगेक्षिणि, सार्थक नाम।' महाराष्ट्र, गुजरात अथवा दक्षिण भारत मे नारी अपेक्षाकृति अधिक शिक्षिता, पर्दे से मुक्त है। परिणामतः वहाँ का साहित्य अधिक बौद्धिक, शुष्क, नीरस, वास्तववादी है। वहाँ शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय की सृष्टि जैसी रोती, पति की लात खाकर भी उसी की पद-पूजा करनेवाली सती नायिकाएँ नही होती : और न पति द्वारा पीटे जाने मे धन्यता माननेवाली 'कल्याणियाँ'। मामा वरेरकर (मराठी नटककार, औपन्यासिक) की एक कथा नायिका होटल मे रोटी बेलने वाली स्त्री है जो सर्कस मे आगे जाकर करने लगती है : वह पुरुष पात्रो से हटर से कम बात नही करती : जैसे मित्रा के 'पिया' की नायिका। : 'उल्का,' 'प्रमद्वारा', 'शाकुन्तल' आदि मराठी उपन्यासो की नायिकाएँ तेजस्वी क्रातिकारणी महिलाएँ हैं। नारी जाति के प्रति लेखको का दृष्टिकोण ऐसा नही कि वे उन्हे 'पर्दे की रानी' माने या निरे व्यक्तित्वशून्य खिलौने। नये उपन्यासों मे नारी सृष्टि जैसे नायक की इच्छा पूर्ति के साधनार्थ होती जाती है। हमारे लेखकों का अभुक्त यौवना नारी के प्रति यह खाद्य का सा दृष्टिकोण आमूल बदलना होगा। मैट्रिक मे पढ़नेवाली या कालिज की आरभिक कक्षाओं में पढ़नेवाली लड़कियाँ अक्सर हिंदी कथासाहित्य की नायिकाएँ होती हैं। उन्हें हिन्दुस्तानी फिल्मों मे दिखाई जानेवाली कालेज कन्याओं की तरह औसत मान लें, तो नारी-जाति के लिये वे कलकभूता हैं। अक्सर इन सस्ती कहानियों या फिल्मो मे स्त्री मात्र चचला, अप्रामाणिक, तितली सी दिखाई जाती है। पता नहीं हिन्दी की पाठिकाएँ ऐसी रचनाओ के खिलाफ आवाज क्यों नहीं उठातीं ? चाव से वे ये सब सस्ती कहानी की पत्रिकाएँ पढ़ती कैसे हैं ? यह विकृत अभिरुचि की सीमा है।) यह बात मैने सात बरस पहले मेरठ की एक कन्याशाला मे व्याख्यान देते हुए कही थी। आज भी स्थिति ज्यों-की त्यों-ही है।

उच्च शिक्षा स्त्रियों को अलग रूप से देनेवाली कई सस्थाओं को निकट

से देखने का मुझे अवसर मिला है। क्या रूढ़िबद्ध कालिजों, युनिवर्सिटियों और क्या महिलाओ के लिए विशेष विद्यालयो मे; सहशिक्षा देनेवाली संस्थाओ मे और स्वतंत्र शिक्षालयों मे सर्वत्र स्थिति असमाधानकारक, असतोषजनक है। वहाँ के स्त्री-पुरुष संबंध-विषयक ज्ञान, शिक्षा के पाठ्यक्रम, विचार तथा मतों मे, मेरी अल्पमति मे, घोर विकृतियाँ घुस पडी हैं। दोष उन सस्थाओ का उतना नहीं है जितना हमारी समाज व्यवस्था का ही है। और समाज व्यवस्था को बदलने के लिए आवश्यक प्रज्ञा, साहस और दृढ-सकल्प वाले व्यक्तियो का अभाव है।

इस दलील मे तो कोई अर्थ ही नहीं है कि स्त्रियो को स्त्री अध्यापिकाएँ रखकर, बिल्कुल पुरुपो की दृष्टि से बचाकर, असूर्यम्पश्या बना देने से समस्या हल होती है। जैसे पुरुषो के गुरुकुलो मे ब्रह्मचर्यादि जबर्दस्ती चलाने के प्रयोग निष्फल साबित हुए हैं। निषेध मे से नैतिकता निर्मित नही हो सकती। मेरे मन मे स्त्री तथा पुरुषों को अधिकाधिक सहशिक्षा ही नहीं, उन्हे परस्पर सपर्क मे आने के अधिकाधिक अवसर कर्म-क्षेत्र मे ज्यों-ज्यो मिलेंगे, यौन प्रश्नो पर जो घनीभूत पर्दा डाला गया है वह हटकर कुछ खुली हवा आवेगी। कर्म तथा चिंतन के क्षेत्रों मे उसी मात्रा मे मानसिक स्वास्थ्य बढेगा।